प्राप्य स्थान—
चुन्नीलाल भीमराज वोथरा
गंगाशहर, (राजस्थान)



प्रथमावृत्ति १०००



मूल्य— ३)००



मुद्रक—
पवन आर्ट प्रेस,
बीकानेर

समर्पण

उस महान सिन्धु को

जिसके अनन्त अन्तस्थल की उत्ताल तरंगों से भाव भाप के रूप में पानी उठा, युग भाषा पवन से प्रवाहित होकर नील गगन में छितरा। उपयुक्त तापक्रम या बादल के मिष वरसा और उत्तप्त मानव मेदिनी को तृप्त करता सरिता के रूप में आगे बढ़ा आज वही अमृत जल उसी महान् सिन्धु के श्री चरणों में पुनः.........

—मुनि चन्दन "सरदार"

प्रस्तावना—

- विचार एक तत्त्व है। तत्त्व एक दिशा-बिन्दु है। वह बिन्दु जो सत्य-अन्वेषण की प्रेरणा देता है।
- अन्वेषण ही जीवन का मंथन है। आत्म-मंथन, जो मानव की गति का प्रेरक है।
- गति में उत्तरोत्तर प्रगति है। प्रगति में युग-दर्शन का प्रतिबिम्ब है। इस प्रतिबिम्ब को युग-पुरुष तत्त्व के प्रकाश में देखता, अनुभव करता और अपने जीवन-मंथन से तत्त्व का दिग्दर्शन देता है।
- यही दिग्दर्शन दर्शन का रूप लेता, हवा में फैलता और जीवन-रश्मियों में रमण करता हुआ अपनी किरणें तत्त्व में प्रस्फुटित करता है।
- बिन्दु-बिन्दु विचार का सा सार-दर्शन लिये प्रस्तुत "सीपी-सूक्त" केवल पुस्तकीय विचार नहीं, वरन् जीवन-साधना से प्रेरित एक ऐसे साधक की शोध है, जिन्होंने इसे केवल ज्ञान और अनुभव से ही नहीं वरन् अपने आत्म-योग से सींचा है। यह योग जीवन में भी नवीन चिन्तन की धारा लिए एक ऐसा मंथन है, जो युग-सत्य से उद्वेलित है और सार-भूत है।

- अणुव्रत द्रष्टा आचार्य श्री तुलसी ने योग साधना के साथ 'अणुव्रत-दर्शन' के रूप में योग-जीवन में भी युग का एक नया चिन्तन दिया है। उन्हीं के शिष्य मुनि श्री चन्दनमलजी ने विचार अन्वेषण का यह चुम्बक प्रस्तुत किया है।

- मुनि श्री चन्दनमलजी का सरदारशहर में जन्म हुआ। और वि० सं० २००० गंगाशहर में आचार्य श्री तुलसी के कर कमलों से दीक्षित हुए। साधना के पथ पर बढ़ते हुए अनेक विषयों का अध्ययन किया, तथा गणित ज्योतिष के अच्छे विशेषज्ञ हैं।

- "सीपी-सूक्त" की विशेषता यह है कि अपनी आकार प्रकार पूर्ण पुस्तकीय पृष्ठ के अनुसार ही लगभग सूत्र वाक्यों का इसमें वजनदार और महत्वपूर्ण संकलन है, जो राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक, वैयक्तिक, धार्मिक एवं वैचारिक सभी विषयों का सारपूर्ण तत्त्व के रूप में पाठक को प्रेरणा बोध देती है। निसन्देह जीवन की विविध दिशाओं की ज्ञान-भारती के रूप में "सीपी-सूक्त" मानव-सुख की जीवन-भारती है, जो प्रत्येक के मनन एवं शोधन के लिए पठनीय और संग्रहणीय है।

- "सीपी-सूक्त" से हम कुछ भी ग्राह्य कर सके तो हमारे लिए यह एक सफल अभिव्यक्ति है। उसी की नम्र आकांक्षा के साथ इस सारपूर्ण विचार-संकलन के लिए आपका सविनय अभिनन्दन करता हूँ।

बोधि-स्थल
राजनगर
१ जुलाई १९६७

देवेन्द्रकुमार कर्णावट
सम्पादक : "अणुव्रत"

पाठकगण ही बतलायेंगे जो स्वयं साहित्यकार है, साहित्य प्रेमी हैं और साहित्य के मर्मज्ञ हैं । मुझे जो जो वाक्यांश भावपूर्ण और हृदय स्पर्शी लगे उन्हीं को इस पुस्तक में स्थान देने का यत्न किया । पुस्तक रूप में संकलित करने का यह मेरा प्रथम प्रयास है ।

इस सूक्त संकलन में मुझे वयोवृद्ध विनय-निष्ठ मुनि श्री चम्पालालजी स्वामी का सुन्दर मार्ग दर्शन मिला, कलाकार मुनि श्री दुलीचन्दजी पंचपदरा का—उत्साह वर्द्धक सहयोग मिला और मुनि श्री दुलीचन्दजी सरदारशहर से समय समय पर विचार मिले । जिन सहयोगियों से मुझे इस कार्य में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग मिला है उन सबका मैं अत्यन्त कृतज्ञ भाव से आभारी हूँ । शुभं भवतु कल्याण मस्तुः ।

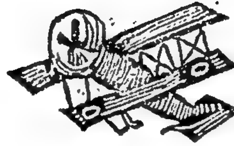
—मुनि चन्दन "सरदार"

सं० २०२४ वैषाख सुदी ३



विषयानुक्रम

(अकारादि क्रम से)



अणुव्रत आन्दोलन

१. अणुव्रत आन्दोलन अहिंसा का आन्दोलन है ।

२. अणुव्रत आन्दोलन विकृति में ग्रस्त मानव को प्रकृति में लाने की एक ठोस परम्परा है ।

३. प्राकृतिक चिकित्सा शरीरगत अप्राकृत या विकृत पदार्थों को निकाल शरीर को जहां सहज स्थिति में लाना चाहती है वहां अणुव्रत आन्दोलन संयम द्वारा आत्मा के सहज गुणों का विकास करके अनैतिकता व अनाचरण जैसे विकृत तत्वों के क्रम में व्याप्त आभ्यन्तरिक रोग का निवारण करना चाहता है ।

४. अणुव्रत आन्दोलन जीवन में नैतिक और चारित्रिक पक्ष पूरा करने का अभियान है ।

५. अणुव्रत आन्दोलन संयम प्रसार का आन्दोलन है जो जीवन व्यवहार को संयम द्वारा मांजना चाहता है ।

६ अणुव्रत आन्दोलन का लक्ष्य है कि ऐसी परिस्थिति का निर्माण हो जिसमें न भोगवृत्ति उच्छृङ्खल बने और न शस्त्रों की बाढ़ आए पर जनता का कदम अहिंसा की ओर आगे बढे ।

७. कुछ बुराइयों को लोग बुराई मानना भूल गए, उन्हें फिर से भान हुआ है और वे बुराई को बुराई समझने लगे हैं। यह आन्दोलन की सफलता है।

८. अणुव्रत आन्दोलन का लक्ष्य है चरित्रवान् समाज का निर्माण हो।

९. अणुव्रत आन्दोलन जन-जन के चारित्रिक जागरण का उद्देश्य लिए चलने वाला एक अभियान है।

१०. अणुव्रत आन्दोलन व्रतों का आन्दोलन है। अहिंसा, सत्य आदि व्रतों के आधार पर ऐसे नियमों का गठन इसमें किया गया है जो जन-जीवन में व्याप्त बुराइयों को परास्त कर सके।

११. अणुव्रत अनदोलन जन-जन में सत्यनिष्ठा, ईमानदारी और नैतिकता लाने का आन्दोलन है।

१२. अणुव्रत आन्दोलन अहिंसा, सत्य पर गठित जीवन शोधणकारी छोटे-छोटे व्रतों के सहारे मानव समुदाय को सद् उद्बोधन देना चाहता है। उसे स्वार्थ की भूमिका से परे हटा कर परमार्थ की भूमिका पर लाना चाहता है।

१३. अणुव्रत आन्दोलन अहिंसा, सत्य आदि के आधार पर सुषुप्त मानव को जागृत करने का एक उपक्रम है। वह काले और गोरों में, हरिजन और महाजनों में, किसान व जमींदारों में, मजदूर व पूंजीपतियों में समानता सौहार्द व निर्द्वन्द की स्थिति देखना चाहता है यह मनुष्य के नैतिक व आध्यात्मिक-उन्नयन से ही सम्भव है।

१४. अणुव्रत आन्दोलन हृदय-परिवर्तन का मार्ग है। वह व्यष्टि-सुधार से समष्टि-सुधार की दिशा में आगे बढ़ता है।

१५. अणुव्रत आन्दोलन विचार-निर्माण का आन्दोलन है। वह मनुष्य के संस्कारों में से शोषण, संग्रह आदि दोषों को मिटाकर एक उदार मानवीय-भावना का संचार करता है।

१६. अणुव्रत आन्दोलन के अन्तर्गत मैत्रीदिवस-कार्यक्रम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में चलने वाले शीतयुद्ध व तनावों की दिशा में एक सात्विक चरणविन्यास है।

१७. अणुव्रत आन्दोलन किसी व्यक्ति व समाज का नहीं, वह सबके लिए—सब का है।

१८. अणुव्रत योजना का निर्माण सामाजिक या राजनैतिक सुधार के लिए नहीं हुआ है। उसका उद्देश्य एकमात्र आत्म-सुधार व्यक्ति-सुधार या जीवन-सुधार है।

१९. वास्तव में व्यक्ति-व्यक्ति में आत्मश्रद्धा आए, वह चरित्र-निष्ठ बने, उसका जीवन सचाई, सादगी और नैतिकता से ओतप्रोत हो; यही एक उद्देश्य है जिसे लक्ष्य कर अणुव्रत योजना का प्रवर्तन हुआ है।

२०. अणुव्रत आन्दोलन आज की जनता के जीवन में छाई हुई बुराईयों को निकालने का एक सीधा उपक्रम है।

२१. आज के इस भयग्रस्त व विषम वातावरण को प्रेम, समता व शान्तिमूलक बनाने के लिए 'अणुव्रत योजना' अत्यंत उपयुक्त है।

२२. अणुव्रत का मार्ग प्रतिश्रोत का मार्ग है अर्थात् दुनिया से प्रतिकूल चलने का मार्ग है। यद्यपि अनुश्रोत का मार्ग सरल है और प्रतिश्रोत का दुःसाध्य, फिर भी अनुश्रोत में चलने वाला सागर में पत्थर की तरह गायब हो जाता

है और प्रतिश्रोत में चलने वाला अपने अभीष्ट स्थान को प्राप्त कर अपना अस्तित्व कायम कर लेता है।

२३. अणुबम जहां विध्वंसात्मक है वहां अणुव्रत निर्माणात्मक। अणुबम जहां भौतिक पदार्थों का विध्वंस करता है वहां अणुव्रत दुराचार का विध्वंस करता है।

२४. जो पूर्ण अहिंसक नहीं बन सकते वे अणुव्रत को अवश्य ग्रहण करें। कम से कम निरपराध प्राणी को तो न सतावें—न मारें।

२५. अणुव्रत आन्दोलन बिना किसी वर्ण, वर्ग, जाति और धर्म-भेद के व्यक्ति सुधार के माध्यम से चलने वाला एक नैतिक-निर्माणात्मक अनुष्ठान है।

२६. जीवन सादा रहे, जीविका के साधन सरल और विकार वर्जित रहें, शोषण और अधिकार-हरण की भावना मिटे इसलिए अणुव्रत आन्दोलन चल रहा है।

२७. अणुव्रत जीने की कला है।

२८. व्रत की छोटी से छोटी सीमा अणुव्रत और उसका पूरा रूप महाव्रत है।

२९. धर्म के प्रति मनुष्यों की डगमगाती हुई श्रद्धा को सुदृढ़ बनाने के निमित्त मानव जीवन में नैतिक और चारित्रिक मूल्यों की पुनः प्रतिष्ठापना के प्रयोजन को लेते हुए अणुव्रत आन्दोलन का कार्यक्रम चल रहा है।

३०. सब धर्मों के लोग अध्यात्म के एक सर्वसम्मत मंच पर आ सकें, इसके लिए अणुव्रत आन्दोलन एक ठोस योजना है।

३१. पश्चिम से निकले अणुबम की विभीषिका से मानव आज

व्यग्र है। मुझे विश्वास है पूर्व से (भारत से) निकला अणुव्रत उससे टक्कर लेगा। संघर्ष के बदले शांति, वैमनस्य के बदले मैत्री और लड़ाई-झगड़ों के बदले प्रेम की प्रतिष्ठापना करेगा। लोग इसे देखें, सोचें, समझें और अपनाएं।

३२. यदि आत्मबल और साहस के साथ वह अपने को भलाइयों में—सद्वृत्तियों में प्राणपन से झोंक दे तो कोई कारण नहीं कि उसका जीवन सात्विक न बन सके। इसके लिए अणुव्रत आन्दोलन एक व्यवस्थित और सक्रिय मार्ग प्रस्तुत करता है।

३३. अणुव्रत आन्दोलन एक सीमा करता है, व्यवस्था देता है। इस संयमात्मक सीमा या व्यवस्था का ही दूसरा पर्यायवाची शब्द 'व्रत' है।

३४. अणुव्रत आन्दोलन जीवन में स्थिरता लाने, सत्त्व जगाने और तेज उद्दीप्त करने का आन्दोलन है। यह दर्शन उन ऊंचे और गहन सिद्धान्तों का एक बुद्धिगम्य, व्यवहारगम्य-रूप लोगों को देता है जिससे वे अपने जीवन व्यवहार में एक मंजावट पा सकें।

३५. व्यक्ति मिट नहीं सकता, जाति, प्रदेश, राष्ट्र और धर्म भी मिट जायं—यह संभव नहीं लगता। इन सब की कृत्रिम भेद रेखाएं—ऊपरी सीमाएं मिट सकती हैं। वे मिट जायं—यह अणुव्रत आन्दोलन की प्रेरक भावना है।

३६. अणुव्रत आन्दोलन जन-जीवन में एक उत्क्रान्ति पैदा करना चाहता है, उसे झकझोर देना चाहता है ताकि

चिरनिद्रा में सुप्त मानव-समाज जग सके।

३७. अणुव्रत आन्दोलन की अपेक्षाएं हैं। मनुष्य शस्त्रनिष्ठ न बनकर अहिंसानिष्ठ बने। भौतिक-विकास को मुख्य न मानकर आध्यात्मिक-चेतना को जगाए। भोगी न बनकर व्रती बनें। स्टेण्डर्ड ऑफ लिविंग (Staudard of living) को गौण मानकर स्टेण्डर्ड ऑफ लाइफ (Standard of life) को ऊंचा उठाएं। एक शब्द में आन्तरिक-साम्य को शक्तिशाली बनाकर वैषम्य का अन्त करें।

३८. अणुव्रत युगधर्म इसलिए है कि वह किसी सम्प्रदाय विशेष से जुड़ा हुआ नहीं है।

३९. अणुव्रत आन्दोलन का ध्येय यही है कि दृष्टिदोष मिटे, समभाव का विकास हो, मनुष्य मनुष्य को निकटता से देखे। अर्थ, जाति, भाषा, प्रान्त, सम्प्रदाय और राष्ट्र का भेद उनके बीच में न आए।

४०. अणुव्रत का स्वरूप जितना धार्मिक है उतना ही व्यावहारिक है।

४१. अणुव्रत आन्दोलन का यही आदर्श है कि मनुष्य दूसरे का दमन करने का प्रयत्न न करे। अपनी बुराइयों व अपनी असद्वृत्तियों को जीतने की कोशिश करे।

४२. अणुव्रत आन्दोलन केवल जीवन-शुद्धि की सामान्य भूमिका का समन्वय ही नहीं करता, धार्मिक मत भेदों के प्रति सहिष्णु भी बनाता है।

४३. अणुव्रत की आधारशिला है संयम। इसलिए हम संयम के आधार पर ही जन-जीवन का परिवर्त्तन करना

चाहते हैं।

४४. अणुव्रत आन्दोलन किसी भी धर्म-विशेष का आन्दोलन नहीं है, बल्कि सब धर्मों का समन्वित रूप है।

४५. जो अणुव्रत के सही ढांचे में ढल जाता है वह तो सही मानव बन ही जाता है।

४६. आन्दोलन का लक्ष्य समाज को शक्तिशाली बनाने की अपेक्षा व्यक्ति-व्यक्ति की आत्मा को शक्तिशाली बनाने का है। समाज तो फिर अपने आप शक्तिशाली बनेगा।

४७. जिस प्रकार समुद्र और आकाश में चलने वाले जहाज और वायुयान को निर्दिष्ट स्थान पर सकुशल पहुंचने के लिए दिशासूचक-यन्त्र की आवश्यकता रहती है, उसी प्रकार इस बेढंगी दुनियां में जहां चारों ओर बेईमानी और बेइन्सानियत के बादल मंडरा रहे हैं, मनुष्य को सुख और शान्ति की अपनी इच्छित मंजिल प्राप्त करने के लिए एक नैतिक दिशासूचक-यन्त्र की आवश्यकता है। अणुव्रत-आन्दोलन इसी प्रकार का एक दिशा-सूचक यन्त्र है।

४८. अणुव्रत आन्दोलन यही सिखाता है कि किसी के प्रति आक्रान्त मत बनो, निरपराध को मत सताओ, अर्थ-लिप्सा और लोभ के भयावह तूफानों में अपना स्तर न छोड़ो।

४९. अणुव्रत आन्दोलन जन-जन को आत्मोन्मुख बनाने का आन्दोलन है।

५०. अणुव्रत आन्दोलन साम्प्रदायक मतवाद और जातीय कटुता से दूर जीवन-जागरण का प्रशस्त पथ है, जिस पर

मानव मात्र को चलने का निर्बाध अधिकार है।

५१. जिस प्रकार एक विशाल भवन के लिए मजबूत नींव की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार अणुव्रत आन्दोलन का प्रासाद सत्य और अहिंसा के विशाल और मजबूत खम्भों पर टिका हुआ है।

५२. अणुव्रत आन्दोलन के प्रसार में ही सत्य और अहिंसा का प्रसार है।

५३. जो सात्विक, संयत, उज्ज्वल और सरल जीवन चाहते हैं, अणुव्रत आन्दोलन उनके लिए एक पथ-दर्शन है।

५४. अनैतिकता और अनाचरण के झंझावात से डगमगाते लोक-जीवन के लिए अणुव्रत वह आधार है जो उसे नैतिकता और सच्चरित्र पर टिकाए रखने की एक अभिनव प्रेरणा देता है।

५५. अणुव्रत आन्दोलन मानव को दृढ़ संकल्पी बना उसे संयत और सुनियमित जीवन-चर्या अपनाने का मार्ग देता है।

५६. अणुव्रत अपने आप में कुछ नहीं है। वह तो अणुव्रतियों के जीवन पर निर्भर है। वे ही उसके आदर्शों की कसौटी हैं। उनका जीवन जितना ऊंचा होगा, सदाचार और सात्विकता की ज्योति से जितना ज्वलन्त होगा, उतनी ही आन्दोलन की विशेषता है।

५७. धार्मिकों के बिना धर्म कुछ भी अर्थ नहीं रखता। इस प्रकार अणुव्रत अपने आप में कुछ नहीं है। उसका बदनाम या सनाम अणुव्रतियों पर ही आधारित है। वे तो व्रत हैं, जो पुस्तकों में लिखे पड़े हैं अतः आवश्यकता है, आज उन्हें जीवन में उतारा जाये।

५८. अणुव्रत आन्दोलन संयम के माध्यम से लोगों की भौतिक वस्तुओं की आसक्ति और ममत्व को कम करने की प्रेरणा देता है।

५९. अणुव्रत आन्दोलन संग्रह व शोषण की वृत्तियों को मिटा कर आवश्यकताओं के अल्पीकरण पर बल देता है। वह व्यक्ति में संकीर्ण वृत्तियों का संकोच कर "मिति में सव्व भुयेसु" वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श लाना चाहता है।

६०. अणुव्रत आन्दोलन मनुष्य के दृष्टिकोण व मानदण्ड को बदलना चाहता है, मनुष्य असंयम से मुड़कर संयम की ओर बढ़े। उसका घोष है, 'संयमः खलु जीवनम्' अर्थात् संयम ही जीवन है।

६१. अणुव्रत आदर्श जीवन के अध्यात्मपक्षीय आदर्श है, जिनका जीवन के सर्वतोमुखी परिमार्जन में पर्याप्त हाथ है।

६२. अणुव्रत आन्दोलन छोटे-छोटे व्रतों के माध्यम से व्यक्ति को संयमपूर्ण जीवन की प्रेरणा देकर समाज के नैतिक एवं चारित्रिक स्तर को उन्नत बनाने का आन्दोलन है।

६३. अणुव्रत आन्दोलन मानव जीवन में परिव्याप्त अनैतिकता के घाव का आन्तरिक पीप सुखाकर उसे निरामय बनाना चाहता है।

६४. अणुव्रत आन्दोलन मानव को संयताचरण की ओर ले जाने का क्रमिक विकासमय मार्ग है।

६५. अणुव्रत आन्दोलन अपने-आपको जीतने का, अपनी कलुषित वृत्तियों को नियन्त्रित करने का सफल मार्ग देता है।

६६. अणुव्रत आन्दोलन और कुछ नहीं केवल यही करना

चाहता है । वह स्वार्थपरता, अर्थ लोलुपता और असंतोष वृत्ति का उन्मूलन करना चाहता है ताकि आज का असन्तुलित, अस्त-व्यस्त और डाँवाडोल जीवन सन्तुलन, स्थिरता और स्वनिष्ठा पा सके ।

६७. अणुव्रत के आदर्श विश्व जनीन आदर्श हैं, शास्वत और सनातन आदर्श हैं ।

६८. आदर्श केवल ग्रंथ और वाणी में न रहकर जन-जन के व्यवहार में आएं, रोज़मर्रा की जिन्दगी में उनका संचार हो, इस वृत्ति को जगाना अणुव्रत आन्दोलन का अभिप्रेत है ।

६९. अणुव्रत आन्दोलन नागरिक जीवन में स्फूर्ति और सूचिता भरने का एक सफल साधन है । दूसरे शब्दों में मैं कहूँ तो यह व्यक्ति के अनैतिक रोगों की अमोघ औषधि है ।

७०. अणुव्रत आन्दोलन सर्व धर्म समन्वय का प्रतीक है । उन सर्व धर्म सम्मत आदर्शों को प्रस्तुत करता है, जो मानव मात्र के कल्याण के आदर्श हैं । लोक जीवन को जगाने का आदर्श है ।

७१. अणुव्रत आन्दोलन जीवन को परिष्कृति देने का वह पावन स्त्रोत है जिसमें अवगाहन करने का अधिकार हर मानव को है ।

७२. अणुव्रत आन्दोलन धर्म के ऊंचे तत्त्वों को जीवन व्यवहार में इस सफलता और सहज भाव से जोड़ता है कि भार रूप में न रहे और व्यक्ति के जीवन का हर पक्ष सदाचार के वुनियादी उसूलों से जुड़े ।

७३. अणुव्रत आन्दोलन व्यक्ति सुधार को प्रमुखता देकर चलने

वाला चरित्रशुद्धिमूलक रचनात्मक आन्दोलन है।

७४. अणुबम पराजय, भय और कायरता का प्रतीक है। अणुव्रत विजय, अभय और वीर वृत्ति का संदेश है।

७५. अणुव्रत संग्रह का मर्यादा करण है।

७६. अणुव्रत आन्दोलन अहिंसा को जीवन में साक्षात्कार कराने का एक प्रयोग है।

७७. अणुव्रत किसी धर्म, सम्प्रदाय आदि का नहीं है, वह तो मानव धर्म है।

७८. अणुव्रत का लक्ष्य है जीवन को शुद्ध, हल्का, सहिष्णु और संतुलित बनाना।

अणुव्रती

१. अणुव्रती का जीवन एक प्रयोगशाला जैसा होना चाहिए।

२. अणुव्रतियों को चाहिये कि वे केवल व्रतों की शब्दावली को ही न पकड़े बल्कि भावना को समझ कर उनका पालन करें।

३. वृक्ष के बाह्य आकार की अपेक्षा जड़ दृढ़ होती है। जड़ की दृढ़ता के बिना वायु के वेग से उसको गिरने का खतरा रहता है। वसे ही अणुव्रती भी अपने व्रत मूल को सुदृढ़ करे, व्रतों की अन्तरात्मा को समझे और उसका निष्ठा से पालन करे।

४. जीवन-शोधन की इच्छा रखने वाला व्यक्ति ही अणुव्रती बन सकता है ।
५. नैतिक उत्थान वास्तविक सुख है । अणुव्रती संघ नैतिकता की दिशा में विशेष जागरूक है । इसका उद्देश्य है—मानव में मानवता आये—वह मानव जो पथभ्रष्ट होता जा रहा है सही पथ पर आये ।
६. अणुव्रती जीवन का आदर्श है परिग्रह और आरम्भ का अल्पीकरण ।
७. वास्तव में अणुव्रती वे ही बन सकते हैं जिनकी अहिंसा आदि सदाचारमूलक वृत्तियों में निष्ठा होती है ।
८. जो व्यक्ति अत्यन्त विरक्ति और अत्यन्त अविरक्ति के बीच की स्थिति में होता है, वह अणुव्रती बनता है ।
९. अणुव्रती दूसरे के श्रम और श्रमफल को न छीने तभी वह अहिंसा और अशोषण के आदर्श पर चल सकता है ।
१०. एक काम करने में व्रत का भंग तो नहीं होता, पर व्यवहार अच्छा नहीं लगता तो अणुव्रती को उससे बचना चाहिये ।
११. कार्यशील जीवन में ही जो व्यक्ति अणुव्रती बनेगा, वह अपने जीवन में शांति का अनुभव करेगा ।
१२. अणुव्रती वह है जो समाज में रहते हुए अपनी नैतिकता को स्थिर रखने का प्रयास करे ।



अणुबम

१. अणुबम जैसे खूंखार अजगर के मुंह में हाथ डाल कोई अमृत प्राप्त करना चाहे तो क्या यह सम्भव है ? कदापि नहीं । वहां तो एक मात्र गरल ही मिलेगा जिसका फल है विनाश और मृत्यु ।

२. अणुबम व हाइड्रोजन बम शान्ति चाहने वाले भयंकर अजगर के मुंह में हाथ डालकर अमृत प्राप्त करना चाहते हैं ।

अन्तरावलोकन

१. जिस तरह साहित्य की साधना, विद्या की आराधना और वाङ्मय का अन्वेषण एवं शोधन महत्वपूर्ण कार्य है उससे भी अधिक आवश्यक और महत्वपूर्ण एक बात और है, वह है अपने आपका अन्वेषण, अन्तरतम को शोधना ।

२. अन्तर अवलोकन जीवन में नव चेतना का संचार करता है विगत भूलों को सुधारने का अवसर देता है ।

अन्तर्मुखता

१. अन्तर्मुखी सदा सुखी वहिर्मुखी सदा दुखी ।

२. राजस्थान के ऊंट की तरह वहिर्मुखी सदा दुखी ही रहते हैं ।

३. अन्तर्मुखी बने बिना शान्ति का प्राप्त होना कभी भी सम्भव नहीं ।

४. अन्तर्मुखी शान्ति का श्रोत अपने में ही प्राप्त कर लेता है और वहिर्मुखी अज्ञानी मृग के सदृश कस्तूरी की सुगन्ध को बाहिर ढूंढता है पर वह शान्ति की सौरभ बाहिर कहां से उपलब्ध हो ।

५. अन्तर्मुखता जो जीवन का पहला और आवश्यक अंग है, उससे आप अपने को परांगमुख न रखें ।

६. अन्तर्मुखी हमेशा गम्भीर रहता है ।

अधिकार

१. तुम सुख का उपभोग करो यह तुम्हारे अधिकार की बात है, पर औरों के सुख को लूटना, औरों के सुखों में बाधक बनना तुम्हारी अनधिकार चेष्टा है।

२. तुम्हारे अधिकार छीने जाने पर जैसे तुम्हें पीड़ा होती है क्या औरों को भी वैसी पीड़ा नहीं होती ?

३. उपदेश देने का अधिकार उन्हें ही है जो पारदर्शी हैं। हम भी जो उपदेश देते हैं वह पारदर्शियों द्वारा बताये गये तत्त्वों के आधार पर ही दे सकते हैं।

४. शिक्षा के क्षेत्र में सबका समान अधिकार है।

अधिकारी

१. जिस मार्ग में जो स्वयं स्पष्ट होता है, वही उसकी प्रेरणा देने का अधिकारी है।

अध्ययन

१. केवल अक्षर पढ़ना ही नहीं उसका आचरण करना सीखना है, वही वास्तविक अध्ययन है।
२. एकाग्रता गम्भीर अध्ययन के लिए पहली अपेक्षा है।

अध्यात्म

१. मनुष्य चिन्तनशील व अनुभूति प्रधान प्राणी है। रोटी, कपड़ा व पार्थिव-भोग सामग्री ही उसकी अंतिम मंजिल नहीं है। इन सबके परे उसके मन की भी कोई खुराक है और वह है आध्यात्म।
२. आध्यात्मिक क्षेत्र में महिलायें सदा से पुरुष जाति का पथ-प्रदर्शन करती आई हैं।

३. आध्यात्मिक जीवन इतना सुन्दर, इतना स्वच्छ और इतना निर्मल है कि उसमें विश्व की सभी चीज शुद्ध रूप में समा जाती है।
४. मानव जीवन को सार्थक बनाने के लिए मनुष्य को ज्यादा से ज्यादा ग्राध्यात्म मार्ग की ओर अग्रसर होना चाहिये।

अध्यापक—विद्यार्थी

१. अध्यापकों के चरित्र का प्रतिबिम्ब विद्यार्थियों पर कम या अधिक किसी न किसी मात्रा में अवश्य पड़ता है।
२. पुस्तक शिक्षा की अपेक्षा अध्यापकों के व्यवहार व उनके विचारों का अधिक प्रभाव पड़ता है।
३. यदि ग्रध्यापकों का जीवन संयम शून्य होगा तो विद्यार्थियों के चरित्र निर्माण की उनसे क्या आशा की जा सकती है ?
४. बालक पुस्तकों और अध्यापकों की वाणी से नहीं पढ़ते, वे पढ़ते हैं अध्यापकों के आचरण से। अध्यापकों का जीवन जैसा होगा वैसी ही छाया उन पर पड़ेगी।
५. अध्यापकों के जीवन की सात्विकता विद्यार्थियों पर जैसा प्रभाव डालती है, उनके लम्बे-लम्बे लच्छेदार पांडित्यपूर्ण

भाषण वैसा असर नहीं करते, यदि उनका जीवन तदनुकूल नहीं है ।

६. अध्यापक का जीवन विद्यार्थियों के लिए खुली पुस्तक होनी चाहिये तभी आज के विद्यार्थी की दशा सुधर सकती है ।

७. व्यसनी अध्यापक के छात्र व्यसनी हुए बिना नहीं रहते ।

८. विद्यार्थियों के जीवन सुधार के लिए अभिभावकों और अध्यापकों का सुधरना अनिवार्य है ।

अनिवार्य

१. अनिवार्य तत्त्व उसे ही कहा जा सकता है जिसके विना कि जीवन, जीवन ही न रह पाये ।

अनुकरण

१. अनुकरण एक खास वस्तु है । हम उसे मिटा दें यह सम्भव नहीं । पर अच्छा हो जिनका अनुकरण किया जाता है हम उन्हें सुधारें ।

२. दूसरों की अच्छाई को अपनाना गुण है तो उनका अंधानुकरण करना महान दोष है ।

अनुभूति

१. जीवन का रहस्य समझने के लिए तर्क की अपेक्षा अपनी अनुभूति अधिक आवश्यक है।

२. अनुभूति मन की एकाग्रता से मिलती है।

अनुशासन

१. वास्तविक अनुशासन वह है जो स्वेच्छा से स्वीकृत किया जाता है।

२. अच्छी चीज ग्रहण करने के लिए अच्छे अनुशासन में रहना कोई दोष नहीं है।

३. जिसने अपने पर अनुशासन नहीं कर लिया है, उसे

वास्तव में दूसरों पर अनुशासन करने का अधिकार ही क्या है ?

४. अपने स्वार्थ से दूसरों पर अनुशासन करने वाला कायर है।

५. अनुशासन मनुष्य के जीवन में बहुत ही कल्याणकारी है।

६. शिविरों के आयोजन में शिविरार्थियों से भी अधिक अनुशासन की आवश्यकता उनके संचालकों में होती है।

७. सूक्ष्म-दृष्टि से देखें तो बाहर का अनुशासन विजातीय अनुशासन है।

८. अनुशासन के बिना कोई भी समाज सचेतन नहीं रह सकता, यह एक निर्विकार तथ्य है।

९. जब तक अपने मन पर अपना नियन्त्रण नहीं तब तक किसी को दूसरों पर शासन करने का अधिकार ही नहीं है।

१०. जो अपने आप पर शासन कर लेता है उसे दूसरों पर अनुशासन करने की आवश्यकता ही नहीं।

११. संघीय अनुशासन जहां शिथिल पड़ता है वहां पतन की सम्भावनाएं हो जाती है।

१२. स्वयं पर स्वयं के अनुशासन के बिना जीवन सुखमय नहीं हो सकता है।

१३. स्त्री हो या पुरुष आत्मबल एवं अनुशासित जीवन ही अपेक्षित है।



अनेकान्त (अपेक्षा) वाद

१. अनेकान्त दृष्टि का अर्थ है—वस्तु के अनेक धर्मों, स्वभावों, अनेक आकारों, प्रत्याकारों का सापेक्ष दृष्टि से विवेचन ।

२. अनेक धर्मों में से किसी एक सापेक्ष-दृष्टि से किसी एक धर्म का वर्णन ही अनेकान्तवाद है ।

३. जिस दृष्टिकोण से व्याख्या है उसे उसी रूप में ग्रहण करना ही जैन दर्शन का नयवाद या अपेक्षावाद है ।

४. सापेक्षवाद यह कहता है कि समन्वय करो, उपेक्षा को सोचो, कहने का अर्थ समझो, झगड़ो मत ।

५. एकान्त-दृष्टि आग्रह की जननी है । आग्रही व्यक्ति तत्त्व को समग्र रूप से समझ नहीं सकता । अनेकान्त दृष्टि सब प्रकार के विरोधों की गुत्थियां सुलझाने वाली एक महान् दृष्टि है ।

६. स्याद्वाद पारस्परिक खींचातान व विग्रह को मिटा कर जीवन की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने वाला दार्शनिक जगत का एक अलौकिक सिद्धान्त है ।

७. किसी वस्तु या पदार्थ को विविध पहलुओं से, दृष्टियों से देखा जा सकता है और अपेक्षा भेद से उसका बहुमुखी निरूपण हो सकता है।

८. अनेकान्तवादी दृष्टिकोण संघर्ष और पारस्परिक कलह को मिटाता है। वह समन्वय तथा एकता का विज्ञापक है।

९. अनेकान्त विरोधी धर्मों का संगम है।

१०. अनेकान्त के व्यवहार से राष्ट्रीय, सामाजिक और पारिवारिक समस्यायें सरलता से सुलझ सकती हैं।

११. अनेकान्तवाद समन्वय और सामंजस्य का बीज है।

१२. अनेकान्तवाद उदार चिन्तन को अवकाश देता है।

१३. अनेकान्तवाद का अर्थ है—अपेक्षा दृष्टि।

अनैतिक

१. भोगवाद और सुविधावाद ही अनैतिकता के पनपने का मुख्य आधार है।

२. आक्रमणकारी सदा अनैतिक होता है।

३. यदि अभाव ही अनैतिकता का मूल होता तो धनिक वर्ग पापी नहीं होता।

४. अनैतिकता का कारण केवल भूख या दरिद्रता ही नहीं है। तृष्णा और लोभवृत्ति भी है।

५. लोग अनैतिक और अशुद्ध वृत्तियों की ओर धड़ाधड़ बढ़ते जा रहे हैं, इसकी मुझे इतनी चिन्ता नहीं जितनी कि लोगों की यह निष्ठा और आस्था मिटती जा रही है कि नैतिकता, सच्चाई और अहिंसा से व्यवहारिक जीवन में काम नहीं चल सकता—इस बात की है।

अभय (निर्भय)

१. अहिंसक वृत्ति में आये हुए व्यक्ति से एक को नहीं, सहस्रों प्राणियों को अभय मिलता है।

२. अभय का सम्बन्ध सिर्फ अपने से ही नहीं है। जो स्वयं अभय बनना चाहता है उसे दूसरों को भी अभय करना होगा।

३. जहां असहिष्णुता होती है वहां एक दूसरे को सहन करने की क्षमता नहीं होती वहां कोई अभय नहीं हो पाता।

४. अभय के बिना स्वतन्त्र भावना विकसित नहीं होती।

५. जहां अभय है, विश्वास है, वहां शान्ति को कोई खतरा नहीं होता।

६. अणुव्रत ही मनुष्य को अभय बनाता हैं।

७. भय से भय बढ़ता है। अणुबम ने मनुष्य को भयभीत बना दिया, तो विपक्ष के लोग हाइड्रोजन बम बनाकर

अभय बनना चाहते हैं। पर अभय का रास्ता यह नहीं है अणुव्रत अभय बनने का मार्ग है।

८. अभय और विश्वास का साधन मैत्री है।

९. जीवन विकास के लिए अभय की बहुत बड़ी उपयोगिता है।

१०. आपका अभयभाव शत्रु को भी मित्र बनायेगा।

११. शान्ति का प्रकाश अभय के सान्निध्य में फैलता है।

१२. मेरी दृष्टि में शान्ति और सुख का सही और अनुपम मार्ग है निर्भयता।

१३. निर्भय बनने का मार्ग यही है कि मनुष्य प्रमाद से दूर रहे।

१४. निर्भीकता तभी पैदा होगी जब कि हम अपने को शक्तिशाली बनायें। शस्त्रों से शक्तिशाली नहीं बनाया जा सकता है। वह तो कमजोरी की निशानी है। असली ताकत है आत्मबल। आत्मबल अहिंसा और सत्य से पैदा होगा।

१५. दूसरों को भयमुक्त वही बना सकता है जो स्वयं निर्भय होता है।

अभाव—समभाव

१. जहां अतिभाव नहीं होता, वहां अभाव भी नहीं होता।

२. अभाव विवशता से होता है। वह दुख देता है।

३. आज का संघर्ष अभाव और अतिभाव का संघर्ष है, दोनों से बचकर चलने का मार्ग समभाव है।

अभिभावक

१. जो अभिभावक दुर्व्यसनी हैं, वे अपनी सन्तानों को न चाहते हुए भी दुर्व्यसन का पाठ पढ़ा रहे हैं।
२. जो अपनी सन्तानों को सुधारना चाहे वे पहले अपने आपको सुधारें।

अर्थ (धन)

१. जब तक अर्थ की गुलामी से इन्सान का गला नहीं छूटेगा तब तक हजार कोशिशें करने पर भी उसे शान्ति और राहत नहीं मिल सकेगी।
२. आज अर्थ की समस्या है इसका अर्थ यह नहीं कि आज अर्थ या अन्न व वस्त्र की कमी है। वह इसलिए है कि एक मनुष्य आवश्यकता से अधिक संग्रह किये हुए है जिसका दुष्परिणाम दूसरों को भोगना पड़ता है।

३. आर्थिक समस्या का चिरस्थायी हल अपरिग्रह के सिवाय दूसरा कोई नहीं

४. मानव की अन्तर्वृत्तियाँ आज अपने मार्ग से भटक गई हैं। उनको मार्ग पर लाने के लिए यह आवश्यक है कि मानव यह समझे कि अर्थ ही सब कुछ नहीं है, सब कुछ है परमार्थ।

५. अर्थ न तो असाध्य रहता है और न आदर्श। वह तो साधन मात्र है। मुख्य साधन भी नहीं, साधन का साधन है। मनुष्य जीवन का आदर्श और साध्य त्याग है।

६. धन जीवन का साध्य नहीं है, लोक जीवन में वह एक साधन है। उसे ही यदि जीवन का साध्य मान लिया जाय तो शोषण, उत्पीड़न, अनाचरण और भ्रष्टाचार से व्यक्ति कैसे बच सकेगा ?

७. धनी बनना मुसीबत को मोल लेना है।

८. जहां अर्थार्जन ने लक्ष्य का रूप लिया वहां अनैतिकता, अनाचरण, अप्रामाणिकता और बेईमानी जैसे दुर्गुण पनपने लगे तो क्या आश्चर्य ?

९. अर्थ जीवन की प्रथम आवश्यकता है, यह मानते हुए भी यह कौन नहीं मानेगा कि प्रेम, अभय, मैत्री, शान्ति और विश्वास जीवन की प्रथम आवश्यकताएं नहीं है।

१०. अर्थ के लिए व्रत को अपनाने वाला अर्थनिष्ठ हो सकता है व्रतनिष्ठ या अहिंसानिष्ठ नहीं।

११. अर्थ में अनेक समस्याएं पनपती हैं। जिसकी जड़ ही समस्या है उसमें से समाधान कहां से आएगा।

१२. सामाजिक कार्यों के लिए अर्थ का व्यय आध्यात्मिक नहीं

हो सकता, पर वह आवश्यक हो सकता है।

१३. अपनी तरफ से अर्थ की चिन्ता से मुक्त होना ही उसका विसर्जन है।

१४. अर्थ लौकिक जीवन के लिए उपयोगी है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता है। पर वह रोग की दवा है, दैनिक भोजन नहीं।

१५. धन शान्ति का साधन नहीं है। यदि धन से शान्ति मिलती, तो आज धनवान इतने अशान्त नहीं रहते।

१६. जब तक लोग धन कुबेरों को 'महान्' मानेंगे तब तक जगत की स्थिति निरापद नहीं हो सकेगी।

१७. जब तक व्यक्ति धन संग्रह की भावना को नहीं छोड़ेगा तब तक उसमें धार्मिकता आना सम्भव नहीं।

१८. मनुष्य यह समझे कि वह वस्तु के लिए नहीं अपितु वस्तु उसके लिए है। धन के लिए मनुष्य नहीं, अपितु मनुष्य के लिए धन है।

१९. आज किसी दार्शनिक और चरित्रशील व्यक्ति की उतनी पूछ नहीं है जितनी धन सम्पन्न की। यह दृष्टिकोण का विपर्यास है, गलत मूल्यांकन है।

२०. अधिक धन संग्रह से कोई बड़ा नहीं हो सकता।

अशान्ति

१. अशान्ति का मूल कारण आवश्यकताओं की वृद्धि है।

२. अशान्ति की जड़ परिग्रह-विस्तार या अधिकार विस्तार की भावना है।

३. क्रोध, अभिमान, दम्भ और असन्तोष ये चारों ही अशान्ति के मूल हैं।

४. भौतिक विकास के साथ नैतिक विकास का सन्तुलन रहे तो अशान्ति उभरती नहीं, किन्तु जब जीवन का आध्यात्मिक पक्ष दुर्बल होता है, तो पग-पग पर अशान्ति का अनुभव होने लगता है।

५. समूचे विश्व पर अधिकार जमाने वाला एक मुहूर्त्त मात्र भी सुख की नींद नहीं सोता, प्राणी मात्र को आत्म तुल्य समझने वाला तृण मात्र भी उद्विग्न नहीं होता। इससे जाना जाता है कि हिंसा में शान्ति नहीं है।

६. हिंसा, परिग्रह आदि जब जनता के जीवन निर्वाह की परिधि को लांघ कर तृष्णा के क्षेत्र में आ जाते हैं तब सामूहिक अशान्ति का जन्म होता है।

७. आवश्यकताओं की पूर्ति करके शान्ति पाने का जो दृष्टिकोण बनता जा रहा है वह एक भ्रामक दृष्टिकोण है जो जगत पर अशान्ति की चिनगारियां उछाल रहा है।

८. भौतिक विकास के साथ नैतिक विकास का सन्तुलन रहे तो अशान्ति नहीं उभरती।

९. जब जीवन का आध्यात्मिक पक्ष दुर्बल होता है तो पग पग पर अशान्ति का अनुभव होने लगता है।

१०. मनुष्य अभी नहीं जान पाया कि उसकी अशान्ति का मूल स्वयं वही है। उसकी वृत्तियां और प्रवृत्तियां उसका जीवन जटिल बनाती है।

असत्य

१. जिस वाणी या भावाभिव्यंजना के पीछे पूरे विचारों का जाल बिछा रहता है वह स्थूल असत्य है।

२. असत्य विश्वासी सदा भटका सा रहता है।

३. विचारों को सरलता न होना ही माया है—असत्य है।

असम्भव

१. जो नियम के सामने जीवन को नगण्य मानते हैं उनके लिए असम्भव क्या है—कुछ भो नहीं है।

अहिंसा

१. अहिंसा का अर्थ किसी को न मारने तक ही सीमित नहीं है। अहिंसा कहती है किसी को बलात् अपने नीचे मत रखो, किसी का अधिकार मत कुचलो और किसी के विचारों को तोड़ फोड़ कर अन्यथा मत रखो।

२. अहिंसा शब्द जितना सरल है और जनव्यापी है, उसका प्रतिपालन उतना ही कठिन और गहन है।

३. प्राणी मात्र के प्रति आत्मीय भाव अहिंसा का मूर्तरूप है।

४. किसी को सुखी बनाए यह हाथ की बात नहीं है। पर अपनी ओर से किसी को दुखी न बनाए यह अहिंसा का व्यवहारिक प्रयोग है।

५. राजनीति और समाज व्यवस्था शुद्ध अहिंसा के आधार पर नहीं टिक सकती किन्तु उन पर उसका अंकुश रहे, अपेक्षित है।

६. अहिंसा बिना मानव की सभ्यता और संस्कृति का विनाश निश्चित है।

७. किसी के न चलने से पथ अपथ, किसी के न लेने से दया अदया नहीं बनती, वैसे ही किसी के न अपनाने से अहिंसा हिंसा नहीं बन सकती ।

८. प्रत्येक राष्ट्र परस्पर में अहिंसा का प्रयोग करे तो विश्व शान्ति दूर नहीं है ।

९. अहिंसा का आनन्द तब मिलता है जब उसका स्वतन्त्र मूल्य समझ में आ जाये ।

१०. सबके प्रति आत्मभाव ही जैन दर्शन की अहिंसा है ।

११. अहिंसा जीवन दर्शन का तत्त्व है ।

१२. अहिंसा मानव की वृत्ति में है—मरने और जीने में नहीं ।

१३. प्रेम का मार्ग ही विशुद्ध अहिंसा का मार्ग है ।

१४. हिंसा आग बरसाती है और अहिंसा शीतल जल, हिंसा वैर विरोध का उन्नयन करती है और अहिंसा प्रेम, वात्सल्य और सौहाद्र का ।

१५. अहिंसा ज्ञान की सार्थकता है ।

१६. अहिंसा की उपयोगिता केवल मोक्ष आराधना तक ही सीमित नहीं है । जीवन के प्रत्येक कदम में उसकी उपयोगिता निर्विवादतया सिद्ध है ।

१७. अहिंसा जीवन की स्वाभाविक परिणति है ।

१८. अहिंसा का उद्देश्य किसी प्राणी की प्राण रक्षा नहीं, बल्कि आत्मशुद्धि है—पापाचरणों से कलुषित होती हुई आत्मा की रक्षा करना है ।

१९. किसी के जिन्दा रहने, किसी को जिन्दा रखने या किसी के मरने से अहिंसा का सम्बन्ध नहीं है । अहिंसा का

अर्थ है हिंसात्मक प्रवृत्तियों में परिवर्तन ।

२०. अहिंसा की परिपूर्ण या आंशिक साधना के लिए आत्मोपम्य-बुद्धि अथवा आत्मा एकत्व बुद्धि के सिद्धान्त का अनुशीलन करना आवश्यक है ।

२१. अहिंसा किसी व्यक्ति विशेष या किसी समाज विशेष की न होकर वह उसी की है जो उसे जीवन में ढालते हैं ।

२२. अहिंसा वह सारपूर्ण वस्तु है जिससे थके मांदे व क्षत-विक्षत जगत को त्राण मिलता है ।

२३. अहिंसा केवल निषेधात्मक तत्त्व नहीं है, जहां दूसरों की हिंसा करने का निषेध किया जाता है वहां संयम और मैत्री रखना उसके विधानात्मक पहलू के अन्तर्गत आते हैं ।

२४. अहं से, ममत्व से, क्रोध से बचें सबके साथ समता और बन्धु भाव का व्यवहार करें यही अहिंसा की सीख है ।

२५. अहिंसा और सर्वोदय का गहरा सम्बन्ध है । बिना सर्वोदय के अहिंसा नहीं और बिना अहिंसा के सर्वोदय नहीं । सर्वोदय का मतलब है—सबका उदय । सबका उदय अहिंसा से ही सम्भव है ।

२६. अहिंसा धर्म का प्राण है । अहिंसा में अटूट शक्ति है । उसकी सुखद गोद में सारा संसार सुख की सांस ले सकता है । मानव ने अहिंसा को छोड़ हिंसा को जितना ज्यादा पकड़ा उसका जीवन उतने ही संकटों और क्लेशों से जर्जरित बना । जब तक वह हिंसावादी प्रवृत्तियों से मुख नहीं मोड़ता उसे शान्ति मिल नहीं सकती ।

२७. अहिंसा का आदर्श है—सर्वथा, सर्वदा, मनो, वाक्, कर्मणा कृत, कारित, अनुमोदित किसी भी प्रकार की हिंसा

न करना ।

२८. पूर्ण अहिंसक वह होता है जो सबके साथ मैत्री भाव रखता है ।

२९. अहिंसा में सहज आनन्द है । पर जब तक बाहरी विकार बना रहता है तब तक उसकी अनुभूति नहीं हो सकती ।

३० अहिंसा मन, वाणी और देह की निर्विकार स्थिति है ।

३१. अहिंसा का मर्म समझने वाला लड़ाकू नहीं सहिष्णु होगा ।

३२. अहिंसा की आत्मा त्याग में है ।

३३. अहिंसा उपदेश की वस्तु नहीं, वह जीवन का आचार धर्म है ।

३४. अपने दोषों को स्वीकार करना अहिंसा की साधना है ।

३५. निरपराध को न सताना अहिंसा है किन्तु उसका सजीव रूप वहां है जहां विरोधी को भी नहीं सताया जाए ।

३६. सबकी पीड़ा को अपनी-सी पीड़ा समझना ही तो अहिंसा है ।

३७. सत्य, अपरिग्रह, स्वावलम्बन इन सभी का बीज अहिंसा है ।

३८. अहिंसा का प्रयोग-स्थल व्यक्ति ही है ।

३९. एक व्यक्ति यदि महा परिग्रही होता है तो परोक्षतः वह दूसरों का शोषक हो ही जाता है । अतः अहिंसक समाज में महा परिग्रही व्यक्ति को स्थान नहीं मिल सकता ।

४०. अहिंसा वीर पुरुषों का धर्म है । अहिंसा वीरत्व की जननी है । मन, वाणी और कर्म इन तीनों को विशुद्ध, पवित्र रखना, कलुषित व अपवित्र न होने देना ही अहिंसा है ।

४१. अहिंसा मातृभाव की दरी है । ऐसी दरी पर बैठे व्यक्ति

दो दिल नहीं हो सकते ।

४२. अहिंसा में यह विशेषता है कि वह सुई का काम करती है कैंची का नहीं ।

४३. किसी के प्रति शत्रु भाव न रखना, किसी का बुरा न चाहना और न अपनी ओर से किसी के प्रतिकूल आचरण करना अहिंसा है ।

४४. अहिंसा कायरों का नहीं, वीरों का धर्म है इसके लिए बहुत बड़े आत्मबल और धीरज की अपेक्षा है ।

४५. सहिष्णुता और सहभाव अहिंसा के दो पहलू हैं ।

४६. अहिंसा का अर्थ है स्वयं निर्भय होना और दूसरों को अभयदान देना ।

४७. आत्मा—आत्मा में समानता है—यह भावना बने बिना जीवन में अहिंसा टिक नहीं सकती ।

४८. सबके प्रति समभाव, शत्रु के प्रति भी प्रेम का व्यवहार, यही वास्तविक अहिंसा है ।

४९. अहिंसा का अर्थ है बाहरी आकर्षण से मुक्ति ।

५०. हिंसा अहिंसा की भेद रेखा परिस्थिति पर रहे, तब तो अहिंसा बच्चों का खिलौना होगा ।

५१. अहिंसक अपने अधिकारों से सन्तुष्ट रहता है वह दूसरों की सत्ता को निगलना नहीं चाहता ।

५२. अहिंसा हिंसा पर अंकुश है । यदि यह न रहे तो "जो मारे वही वीर" इस पशुवृत्ति का सूत्रपात होने में कुछ देर न लगे ।

५३. "आप इसे मार रहे हैं, यह नहीं हो सकता; या तो

आप इसे न मारें अन्यथा इससे पहले मुझे मार डालें" इस प्रकार किसी को विवश करना सांसारिक उदारता भले ही हो पर विशुद्ध अहिंसा नहीं कही जा सकती।

५४. अहिंसा वीरत्व की जननी है।

५५. अहिंसा का माध्यम है हृदय परिवर्तन। जब तक हृदय नहीं बदलता, तब तक अहिंसा हो नहीं सकती।

५६. अहिंसा का पालन करना दूसरी भूमिका है। इससे पहली भूमिका है हिंसा को हिंसा और अहिंसा को अहिंसा समझना।

५७. 'मत करो' यही अहिंसा का सिद्धान्त नहीं, अहिंसा का सिद्धान्त है—असत कार्य मत करो—राग, द्वेष, मोह—स्वार्थमय प्रवृत्ति मत करो। "सत्प्रवृत्ति करो" यह अहिंसा का दूसरा पहलू उतना ही बलवान है जितना कि पहला।

५८. किसी तरह से एक प्राणी के प्राण बचा दिये, इसका वह महत्त्व नहीं है जो किसी को अहिंसा वृत्ति में लाना है।

५९. जहां भोग का त्याग हो, उन्माद का त्याग हो, आवेग का त्याग हो, वहां अहिंसा होती है।

६०. जब तक प्रत्येक आत्मा के साथ एकत्व दृष्टि पैदा नहीं होती तब तक अहिंसा का पालन नहीं होगा।

६१. एक से सबका और सबसे एक का हित वहीं हो सकता है जहां अहिंसा है।

६२. अपरिग्रह भी अहिंसा है।



अस्पृश्य

१. कोई भी मनुष्य कभी अछूत नहीं हो सकता। बुराइयां ही अछूत होती हैं।
२. काम के आधार पर किसी को नीचा और अस्पृश्य मानना हिंसा है और व्यवहार विरुद्ध भी है। अगर इसी प्रकार कोई अस्पृश्य होता तो मातायें तो कभी की अस्पृश्य और अपवित्र हो जाती।
३. किसी को अछूत मानना क्या हिंसा नहीं है ?

आक्षेप

१. कौन अच्छा है कौन बुरा, यह व्यक्तिगत किसी को नहीं कहना चाहिए। यह एक प्रकार का आक्षेप हो जाता है।

आग्रह–अनाग्रह

१. आग्रह तत्त्व को नहीं पकड़ता, क्योंकि उसमें एक पक्ष ही रहता है। प्रत्येक वस्तु के दो पक्ष हैं। जहां एकान्ततः वस्तु का प्रतिपादन है वहां तत्त्वतः सत्य नहीं रहता।

२. ही और भी में बड़ा अन्तर है। ही आग्रह का द्योतक है और भी अनाग्रह का। ही एक को पकड़ कर बैठ जाता है और भी भिन्न-भिन्न दृष्टियों से परखता है। इसीका नाम सत्य है।

३. "भी और ही" में इतना अन्तर है कि जहां 'भी' है वहां ढील होती है और जहां 'ही' है वहां तनाव पैदा होता है, झगड़े पैदा होते हैं।

४. किसी एक विचार का आग्रह करने वाले अग्रह्य के परिणाम की भयंकरता को असमय, समय से पहले ही ला देते हैं।

५. अनाग्रही तर्क और युक्ति वहां ले जायेगा जहां से सत्य खोजा जासके।

६. आग्रह हठ धर्मिता है उसमें तत्त्वा-तत्त्व का भान नहीं रहता ।

७. आग्रहहीनता ही सबसे बड़ा धर्म है ।

८. जहां एकान्तिकता है, वहां झगड़ा है, द्वेष है, कलह है, चिनगारियां हैं ।

आचरण

१. भले या बुरे आचरणों का जितना असर होता है उतना भली या बुरी शिक्षा का नहीं होता ।

२. संसार यह देखना नहीं चाहता है कि आप कितना दान, पुण्य और जाप करते हैं । वह तो यह देखना चाहता है कि आपके आचरण कितने पवित्र हैं ? शोषण का चक्र चलाते हैं या नहीं ? आप मानवता का मूल्य कितना आंकते हैं ?

३. धार्मिक नियमों का आचरण करना कठिन है, असंभव नहीं।

४. यदि धर्म का आचरण किया जाये तो वह विश्व को सुखी करने के लिए सर्व शक्तिमान है और यदि धर्म का आचरण न किया जाय तो वह कुछ भी नहीं कर सकता ।

५. उपदेश की अपेक्षा आचरण का प्रभाव अधिक पड़ता है ।

आचार—विचार

१. आचार आये, पनपे और फले; इससे पूर्व विचार-क्रांति आनी चाहिये।

२. आचार सबके लिए एक है। साधु के लिए जो कार्य पाप है; गृहस्थ को वह धर्म कैसे होगा?

३. दूसरों के आचार-विचार की मर्यादा को समझो, उसके प्रति न्याय करो, विशेष न्याय न कर सको तो कम से कम अन्याय तो मत करो।

४. आचार और विचार ये जहां दो है। वहां एक भी है। विचार के अनुरूप ही आचार बनता है अथवा विचार ही स्वयं आचार का रूप लेता है।

५. शुद्ध विचार के बिना शुद्ध आचार नहीं बनता।

६. विचार के बिना आचार पूरा फलता नहीं। उसमें वह ओज और वैशिष्ट्य नहीं आता जो विचार पूरित आचार में आता।

७. आचार के बिना केवल विचार कोई सार नहीं रखता।

८. जो स्वयं आचारशील नहीं होते, उनका प्रचार लोगों में क्या असर लाता है, कुछ भी नहीं।

९. स्वाध्याय, मनन और चिन्तन के विना विचार विकास नहीं पाते, विचार के बिना आचार स्थिर नहीं बनता।

१०. आचारवान् यदि थोड़े से भी हों तो अपारशक्ति और आर्कषण के केन्द्र हो सकते हैं। आचार भ्रष्ट बहुत से होकर भी निकम्मे और निष्प्रयोजन हैं।

११. आचार और आचार का कार्य श्रद्धा नहीं कर सकती। दोनों का समन्वित रूप ही लक्ष की प्राप्ति का सही साधन है।



आत्मधर्म–लोकधर्म

१. आत्मधर्म और लोकधर्म में मुख्य अन्तर है—आत्मधर्म आत्मशुद्धि का साधन है। वह अहिंसा और सत्य के माध्यम से चलता है जबकि लोकधर्म में अनिवार्य आवश्यकता के प्रसंग में अहिंसा और सत्य के विरुद्ध भी आचरण होता है। आत्मधर्म शाश्वत है अपरिवर्तनीय है।

२. आत्मधर्म और लोकधर्म आगम सिद्ध है। दोनों का अन्तर समझने के लिए आत्म निर्मलता, अपरिवर्तनीयता और सर्व साधारणता ये तीन हेतू हैं।

३. लौकिकधर्म जहां परिवर्तनशील है वहां पारमार्थिक धर्म सर्वदा सर्वत्र अपरिवर्तनशील व अटल है ।

४. पारमार्थिक धर्म कभी और कहीं नहीं बदलता । वह जो कल था वही आज है और जो आज है वही आगे रहेगा ।

५. पारमार्थिक धर्म की गति जब आत्म विकास की ओर है तब लौकिक धर्म का ताँता संसार से जुड़ा हुआ है ।

६. जो समाज का अभ्युदय करे वह समाज की मर्यादा है और जो आत्मा का अभ्युदय करे, वह धर्म है ।

७. किसी को भोजन, वस्त्र की कमी में सहायता प्रदान करना या रोग आदि का उपचार कराना अध्यात्म धर्म नहीं, किन्तु पारस्परिक सहयोग है ।



आत्म निरीक्षण

१. आत्म-निरीक्षण में वंचना नहीं चल सकती ।

२. आज समाज में आत्म-निरीक्षण का अभ्यास नहीं है यही बीमारी है । यदि इस बीमारी को मिटाना है तो हमें समाज में आत्म-निरीक्षण की भावना पैदा करनी होगी ।

३. आत्म-निरीक्षण सुधार का आन्तरिक एवं अमोघ उपाय है ।

४. दर्पण में चेहरा देखने पर जैसे उसकी सुन्दरता एवं असुन्दरता के विषय में स्पष्ट आभास हो जाता है और

उसको संवारने में मनुष्य समर्थ होता है उसी प्रकार आत्म-निरीक्षण अपनी योग्यता अयोग्यता का साफ प्रति-बिम्ब सामने ला देता है और उसके बाद व्यक्ति को अपने में सुधार करने का पर्याप्त अवकाश मिल जाता है।

५. आत्म-चिन्तन अपने द्वारा हुई भूलों को सुझाता है और आगे के लिए जीवन का पथ प्रशस्त करता है। यह एक प्रकार से व्रतों को अच्छे रूप में निभाने के लिए प्रहरी का काम करता है।

६. आत्म-निरीक्षण, आत्म-परीक्षण और आत्म-नियमन, ये तीन विचार जहां नहीं आए हैं वहां मनुष्य अपने आपको नहीं पहचानता।

७. अपने आपको देखने वाले के लिए उपदेश की आवश्यकता नहीं है।

८. दूसरों की आलोचना के बजाय यदि आत्म लोचन किया जाय तो उससे निर्माण हो सकता है।

आत्म-विकास

१. स्वयं को त्याग की कसौटी पर कसना ही आत्मोन्नति का मार्ग है।

२. आत्मा का विकास तब सम्भव हो सकता है जब उसके

अस्तित्व को स्वीकार किया जाय और उसे समझने का प्रयास किया जाय ।

३. आत्मोन्नति और आत्म विकास विचारों की उच्चता एवं श्रेष्ठता पर आधारित है ।

४. आत्म विकास की दिशा में प्रवृत्त होने वाले व्यक्ति का यह भव और परभव दोनों उज्ज्वल है ।

५. आत्मा को विशुद्ध बनाने के लिए पहले उसको संयम द्वारा अनाश्रव बनाकर फिर तप द्वारा उसमें संचित कर्म कर्दम को निकाला जाता है ।

६. आत्म विकास का पगडंडी पर चलने वालों के लिए प्रार्थना एक पावन पाथेय है, संबल है ।

७. युवकों में अदम्य उत्साह है, साहस है और काम करने की क्षमता है । पर इन सबकी सार्थकता तभी है जबकि वे सही माने में जीवन का उद्देश्य समझते हुए चरित्र विकास और आत्म निर्माण के पुनीत लक्ष्य में इनका प्रयोग करें ।

८. आत्म उत्थान होगा सद्ज्ञान और सत्क्रिया के आचरण से, जिसे किसी सम्प्रदाय-विशेष की चहार दिवारी से बांध नहीं सकते ।

९. मस्तिष्क-विकास, चरित्र विकास के माध्यम से ही आत्म विकास तक पहुंच जाता है ।

१०. आत्म-विकास का चरम रूप ही वास्तविक मंगल है ।



आत्मा

१. आत्मा के संरक्षण के लिए या मानवीय शक्ति के विकास के लिए सदाचार और नैतिकता का आश्रय आवश्यक है।
२. विशुद्धात्मा में ही विशुद्ध धर्म का निवास हो सकता है।
३. आत्मा अनन्त शक्तियों का तेज पुञ्ज है पर जब तक वह आवरणमय है, वे शक्तियां अभिव्यक्त नहीं हो पाती। उनकी अभिव्यक्ति के लिए आत्मा पर छाये हुए कर्मा-वर्ण तोडक मूलक चिर साधना की अपेक्षा है। ज्यों ही आवरण दूर हुए, आत्मा की असीम शक्ति व्यक्त हो जाती है, जीवन ज्योतिर्मय बन जाता है।
४. अध्यात्म तत्त्व का गवेषण, परिज्ञान, अनुशीलन जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण पहलू है। जिसने आत्मा को नहीं जाना उसने कुछ भी नहीं जाना। जिसने एक आत्मा को जाना, उसने सबको जान लिया।
५. आत्मा अमर है। उसकी स्थिति में कोई भी दूसरा हस्तक्षेप नहीं कर सकता। व्यक्ति की वह स्वतन्त्र

सम्पत्ति है जिसको अगर वह चाहे तो सुरक्षित रख सकता है, उसका विनाश भी उसीके वश में है।

६. नव तत्त्व, छः द्रव्य को समझ कर सम्यक्त्व प्राप्त कर उन्नति करती हुई आत्मा परमात्मा बन जाती है।

७. आत्मा का पूर्ण विकसित रूप ही परमात्मा का स्वरूप है।

८. जो पूर्वापरिभूत ज्ञान है वही आत्मा है।

९. आत्मा और शरीर एक नहीं दो हैं। आत्मा की सेवा अपनी सेवा है। शरीर की सेवा अपनी सेवा नहीं, जड़ की सेवा है। जड़ की सेवा में इष्ट की प्राप्ति सम्भव नहीं।

१०. आत्मा का सबसे महत्वपूर्ण गुण और लक्षण ज्ञान है जो आत्मा के सिवा अन्यत्र कहीं नहीं देखा जा सकता।

आत्मा की जय-पराजय

१. सुख का वियोग और दुख का संयोग मत करो—यह भावना आत्म विजय का प्रतीक है।

२. सुख मत लूटो और दुख मत दो—इस उदात भावना में आत्म-विजय का स्वर जो है, वह है ही। उसके अतिरिक्त जगत की नैसर्गिक स्वतन्त्रता का भी महान निर्देश है।

३. सही अर्थ में बाहरी वस्तुओं पर विजय की भावना ही

आत्मा की पराजय है।

४. आपद्धर्म का सहारा लेकर यह कहना कि क्या करें? स्थितियां ही ऐसी बन गई और कोई चारा ही नहीं था। यों अपने साधना मार्ग से हटना एक बहुत बड़ी पराजय है।

५. परिस्थितियों के आगे घुटने टेकना मानव की घोर पराजय है।

आत्मानन्द

१. शत्रु-मित्र के प्रति और दुःख सुख में व्यक्ति सम रहे तो बहुत कुछ आत्मानन्द मिल सकता है।

२. सुखानुभूति को आनन्दानुभूति से जीतना चाहिये।

३. व्यक्ति जब गृहस्थ जीवन के झमेले से ऊब कर धार्मिक उपासना व क्रिया-कर्मों में लगता है तो उसे आत्मानन्द की अनुपम अनुभूति होती है।

४. पदार्थ जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक है किन्तु जब वे मात्रा से अधिक हो जाते हैं तब उनसे जीवन का सात्विक आनन्द दब जाता है।

आत्मानुशासन

१. वह विचलित होना नहीं जानता, जिसने कि अपनी आत्मा पर अनुशासन स्थापित कर लिया है।
२. आत्मानुशासन के बिना कोई भी कार्य सफल नहीं हो सकता।
३. मेरा यह निश्चित अभिमत है कि चाहे कोई व्यक्ति हो या समाज, कोई योजना हो या कार्यक्रम, सारे ही तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक कि आत्मदमन और आत्मानुशासन को बल व प्रश्रय नहीं दिया जाता।
४. आत्मसंयम का अर्थ है—अपने द्वारा अपने लिए अपना नियन्त्रण।
५. आत्मसंयम में जो आनन्द मिलता है वह नियन्त्रण में नहीं।
६. जहां आत्म नियन्त्रण और आत्म संयमन नहीं मैं वहां मृत्यु देखता हूँ।
७. संयत और आत्म-नियंता जिस आत्म तुष्टि का अनुभव करता है, वह असंयत के लिए कहां सुलभ हो सकती है।

आदर्श

१. वह आदर्श आदर्श नहीं जहां तक आम जनता न पहुंच सके। आदर्श एक लक्ष्य, एक केन्द्र बिन्दु हुआ करता है जहां तक पहुंचने की सबकी कोशिश होनी चाहिए।

२. आदर्श वही होता है जिसका आचरण किया जा सके।

३. जो वस्तु किसी के भी व्यवहार में न आये, वह आदर्श भी नहीं हो सकती।

४. जीवन का आदर्श वाह्य प्रदर्शन एवं फैशन-परस्ती नहीं है। जीवन का वास्तविक आदर्श तो सात्विक, उज्ज्वल और परिमार्जित जीवनचर्या तथा त्याग एवं साधना है।

५. विचार भेद होना एक वात है लेकिन उसको लेकर मत भेद पैदा करना और विरोधी वातावरण को उभाड़ना मानवीय आदर्शों के सर्वथा प्रतिकूल है।

. जैन धर्म के आदर्श केवल आदर्श नहीं हैं वे जीवन व्यवहार को छूने वाले हैं। उनकी साधना दो तरह से है—एक महाव्रत और दूसरा अणुव्रत।

आरोप वाद

१. 'आरोप वाद' को मिटाने से वास्तविक शान्ति और सुख सम्भव है। आरोप वाद का अर्थ है—वाह्य पदार्थों में सुख दुःख की कल्पना करना या यों कहिये कि काल्पनिक सुख दुःख ही आरोप वाद है।

२. मनुष्य का सबसे बड़ा दोष दूसरों पर अपराध मढ़ना है। वह अपना दोष स्वयं नहीं टटोलता। यह आरोप वाद ही विश्व शान्ति का सबसे बड़ा शत्रु है।

आलोचना

१. अपनी बुराईयों को निकालने का प्रयास करें तो आलोचना की सार्थकता हो सकती है।

आवश्यकता

१. जीवन में जितने अन्न, जल व वस्त्र की आवश्यकता है—चरित्र, सदाचार और सद्वृत्तियों की उससे भी अधिक आवश्यकता है ।

२. आवश्यकता के उपरांत यदि अर्थ संचय न किया जाये तो दूसरों की आवश्यकताएं अपने आप पूरी हो सकती हैं।

३. आवश्यकताओं को रोक कर हम नाना दुःखों से त्राण पा सकते हैं ।

४. ज्यों-ज्यों साधना का और अधिक विस्तार होगा त्यों-त्यों आवश्यकताएं भी और आगे बढ़ती चली जायेगी फिर मानव इतना दिग्मूढ़ बन जायेगा कि वह सही मार्ग पर पहुंच न सकेगा ।

५. आवश्यकता की पूर्ति करना केवल रोग की बाह्य चिकित्सा मात्र है—सुख नहीं ।

६. जीवन की आवश्यकताएं संयम की उतनी बाधक नहीं हैं जितनी भोग और ऐश्वर्य की आकांक्षा में है ।

७. जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकता है किन्तु लालसाओं की पूर्ति सम्भव नहीं ।

आशक्ति-अनाशक्ति

१. दूसरों में प्रतिष्ठा बढाने या बनाये रखने के लिए नहीं, सच्चाई पर चलने के लिए सत्य, अहिंसा और अनाशक्ति भाव रखना आवश्यक है ।

२. भौतिक उन्नति के भवन का निर्माण आशक्ति की ईंटों से होता है । जहां आशक्ति है, राग-द्वेष का प्राबल्य है और है तव मम का सीमातीत भेद, वहां उद्वेग है, संघर्ष है, दमन है, युद्ध है और अशान्ति है ।

इन्द्रिय-निग्रह

१. आंखों पर पट्टी बांधने मात्र से ही चक्षु इन्द्रिय का निग्रह नहीं हो जाता । यदि इसी प्रकार निग्रह हो पाता तो सब पर्दा नशीन महिलाएं इन्द्रिय निग्रह कारिणी हो जाती । पर पर्दे में भी भरसक देखने का प्रयत्न कैसे कहा जा सकता है ?

ईश्वर भक्ति

१. जिस प्रकार मेढ़ी बैलों को अपने चारों ओर घुमाने में सहायक है पर चलाती नहीं उसी प्रकार हमारा चंचल मन वहां स्थिरता प्राप्त कर सके यही हमारे ईश्वर स्मरण का रहस्य है ।

२. ईश्वर के स्वरूप चिन्तन के सहारे हम भी उन गुणों को प्राप्त कर सकें यही उसकी उपासना का लक्ष्य होता है ।

३. ईश्वर से जो प्रार्थना की जाती है उसका उद्देश्य भी यही होता है कि उनसे प्रेरणा प्राप्त की जा सके । ईश स्तुति का यदि यह सही अर्थ समझ लिया गया और उसके अनुसार आचरण किया गया तो निश्चित ही व्यक्ति अपने कर्तृत्व को दुनियां के समक्ष प्रस्तुत कर सकेगा ।

उठना

१. जो खुद नहीं उठे वे दुनियां को क्या उठायेंगे ?
२. साधु-संत तो सिर्फ मार्ग दे सकते हैं, प्रेरणा दे सकते हैं, उठना तो अपने हाथों में है ।
३. ईश्वर से कभी ऊपर उठने की भीख नहीं मांगनी चाहिए, परमात्मा तो सिर्फ आधार है ।
४. आप सभी खुद अपने आचरणों से ऊंचा उठने की कोशिश करो, श्रमनिष्ठा से कार्य करो ।

उद्दण्डता

१. उद्दण्डता से व्यक्ति बहुत नीचे स्तर पर चला जाता है ।
२. वातावरण स्व नियमन से प्रभावित हो जाये तो बढ़ती हुई उच्छृंखलता की रीढ़ टूट सकती है ।

उदय

१. वह उदय उदय नहीं, जिसमें अपना उदय और दूसरों का तिरोभाव हो ।

२. वह उदय भी उदय नहीं, जिसमें अपना उदय भूलकर दूसरों के ही उदय की कल्पना हो ।



उदार

१. उदार बनेंगे पायेंगे, संकुचित बनेंगे खोयेंगे ।



उन्नति (उत्थान)

१. केवल पद प्राप्ति ही उत्थान नहीं है।

२. उत्थान अमीरी और गरीबी में नहीं, वह तो जीवन के व्यवहार से सम्बन्ध रखता ।

३. वस्तुतः जीवन की उन्नति व्यक्ति के आचार-विचार पर निर्भर है।

४. हम स्वयं नियन्त्रित होकर चलें, तभी हम अपना उद्धार कर सकते हैं।

५. जो उत्कर्ष-शील होता है, उसे लज्जा भी उतनी ही अधिक महसूस होती ।

६. धैर्य उन्नति का प्रतीक है।

७. उन्नति तो अन्तःकरण में सोई पड़ी है, उसे जगाने की आवश्यकता है।

८. मेरा यह प्रबल विश्वास है कि आध्यात्मिक उन्नति ही भारत की और विश्व की उन्नति है।

९. जीवन शोधन के अतिरिक्त यदि धर्म के नाम पर फूट,

कलह, कदाग्रह और क्रूर व्यवहारों को बढ़ावा दिया जाता है तो वहां मनुष्यों का पतन ही है, उत्थान नहीं।

१०. जीवन का स्तर भौतिक अभिसिद्धियों से ऊंचा नहीं बनता, वैभव और सम्पदा से नहीं बढ़ता, वह तो सत्य, प्रामाणिकता, नैतिकता, न्याय और सदाचार से ऊंचा उठता है।

११. जिनके विचार जितने अधिक शुभ्र हैं वे उतने ही अधिक समुन्नत होते हैं।

१२. जो कार्य एक व्यक्ति के लिये आत्म उत्थान का कारण होता है वही दूसरे के लिये पाप बन्धन का कारण भी बन सकता है। इसी तरह वह एक के बन्धन का तो दूसरे के आत्मोत्थान का भी कारण है।

उन्माद

१. उन्माद असंयम की उपज है।

२. एक ओर कम दाम देकर अधिक काम कराने की भावना है, दूसरी ओर अधिक दाम लेकर काम से जी चुराने की भावना है—यह वैयक्तिक उन्माद का दोष है। अतिविलास, अतिभोग आदि चरित्र को लांछित करने वाली सारी वृत्तियां उसीसे पैदा होती हैं।

उपकार

१. किसी के दुर्गुण को छुड़ा देना, हृदय बदल कर उसे बुराइयों से बचा देना ही सच्चा उपकार है।
२. संसार की चिन्ता छोड़ कर अपने जीवन की चिन्ता करें यह स्वार्थ नहीं; सही परमार्थ है।

उपवास

१. आत्म शुद्धि के लिए और वातावरण की शुद्धि के लिए उपवास आवश्यक है।
२. उपवास शारीरिक सुख नहीं देता, किन्तु उपवास में जो आनन्द आता है, वह आनन्द खाने में नहीं आता।

उपासक—उपासना

१. उपासना के साथ आचार शुद्धि और सम्यक बोध भी नितान्त आवश्यक है ।

२. आचार और विचार शून्य उपासना व्यक्ति को जड़ बना डालती है ।

३. यदि जीवन भर माला रटते रहने पर भी आपके आचरण और वृत्तियों में अन्तर नहीं आया तो ऐसी उपासना से क्या होने वाला है ?

४. जो उपासना स्वयं में जड़ है वह दूसरों में चैतन्यता का प्रसार कैसे करेगी ?

५. मन्दिर में जाने, सन्तों के दर्शन कर लेने और गंगा में गोते लगाने मात्र से ही धर्म नहीं हुआ करता । ये सब तो सिर्फ उपासना के बाह्य और थोथे रूप हो सकते हैं ।

६. उपासना आत्मा पर लगे आवरण का अपवर्तन कर उसके परिष्करण का साधन है ।

७. मौलिक अभिसिद्धि के साधन को भूल कर देवी देवताओं

की पूजा करना भूल के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ?

८. उपासना की ऐसी विधि होनी चाहिए जिसमें मन, कर्म और वाणी का यथासम्भव एक्य हो । साथ ही उपास्य का सही निर्णय होना चाहिये ।

९. उपास्य वह हो जो सभी के प्रति समभाव रखता हो और पापियों को पावन करने वाला हो ।

१०. उपासना स्वयं को कृतार्थ करने के लिए होनी चाहिये । उसका उद्देश्य यह न हो कि उससे दूसरे कृतार्थ हो ।

११. भगवान का चरणामृत लेने वाले आज बहुत मिल सकते हैं, उसकी सवारी पर फूल चढ़ाने वालों की भी कमी नहीं है, पर जरा सोचिये, भगवान के पथ पर चलने वाले कितने हैं ? हम अपने आराध्य द्वारा बताये गये पथ पर चलने का प्रयास करें, उनकी सही आराधना इसीमें है ।

१२. उपासक के लिए उपासना के प्रति अन्तर प्रवृत्ति का होना आवश्यक है । यह आवश्यक नहीं कि उपासक वीतरागी हो । वह पापी से पापी हो सकता है पर वर्तमान में उसकी अन्तर प्रवृत्ति उपासना की ओर होनी आवश्यक है ।

१३. परमात्मा की उपासना, पूजा, स्मरण करना चाहिये, पर उससे सौदा नहीं ।

१४. भौतिक सिद्धि और लालसा पूर्ति के लिए परमात्मा को उपासना करना अज्ञान है ।

१५. यदि कोई व्यक्ति कितने भी मन्दिरों में जाता हो और पूजा करता है पर दुर्व्यसनों में लिप्त रहता हो तो पूजा

अर्चना सभी व्यर्थ है। सबसे बड़ी पूजा भगवान के बताए मार्ग पर चलना है।

१६. आत्मा चेतन है, उसे चेतन की उपासना में लगाइये, यही बुद्धिमानी है तथा इसीमें मानव जीवन की सफलता है।

१७. उपासना धर्म का अंग हो सकता है, किन्तु उपासना ही धर्म है, यह मानना भूल है। उपासना के साथ-साथ वासना का विकास होना चाहिये। उपासना के साथ-साथ जो वासना का विनाश हो रहा है वह एक द्वन्द है। द्वन्द से धर्म की उपासना नहीं हो सकती।

१८. चारित्रवान के लिए उपासना केन्द्र और धर्म दो नहीं हो सकते।

१९. धर्म सब जगह सदा एवं सब कार्यों में उपासनीय है।

२०. केवल शाब्दिक स्तवना से क्या बनेगा, यदि जीवन को ऊंचे आदर्शों में ढालने का प्रयास न किया जाये।

२१. साधक प्रत्यक्ष में तो वीतराग भगवान की उपासना करता है, परन्तु प्रकारान्तर से वह अपनी आत्मा की ही उपासना है।

२२. उपासना के प्रतिकूल आचरण से व्यक्ति अपनी उपासना का महत्त्व कम कर देता है।

उपेक्षा

१. दैनिक जीवन में सदाचार को भूला देने से बढ़कर वर्तमान की उपेक्षा और क्या हो सकती है ?

एकतन्त्र

१. एकतन्त्रीय शासन में निस्वार्थ नेता का होना सबसे अधिक आवश्यक है

२. एकतन्त्रीय प्रणाली रहेगी, तब ही संघ सुचारू रूप से चल सकेगा।



एकाग्रता

१. स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए चित्त की एकाग्रता, स्थिरता और सतर्कता की आवश्यकता है।

२. एकाग्रता गम्भीर अध्ययन के लिए पहली अपेक्षा है।



कठिनाई

१. कांटों पर चलने वाला ही फूल का सौकुमार्य और सुरभि पा सकता है।
२. धैर्यधारी मनुष्य सभी कठिनाइयों से साधारणतः मुक्त हो जाता है और धैर्यहीन व्यक्ति अपने आपको खो देता है।
३. कठिनाइयों पर विजय पाना है तो जीवन को बदलना होगा।
४. कठिनाइयों से घबराओगे तो वे बढ़ेगी। उनका सामना करो वे मिट जायेंगी।
५. अभीष्ट मार्ग कठिन जरूर है, काँटों का है, फिर भी वह अभीष्ट है अतः उस पर निर्बाध चलते जाना ही अपने आपको सफलता के निकट पाना है।
६. बिना कठिनाई तो रोटी भी नहीं खाई जाती तो साध्य को बिना किसी कष्ट के कैसे पाया जा सकता है?
७. किसी भी कार्य के प्रारम्भ में ही बड़ी बड़ी विपत्तियां, बाधाएं और कठिनाइयां खड़ी होती हैं।

कर्त्तव्य

१. हर व्यक्ति को आत्म निष्ठा के साथ यह ठान लेना होगा कि उसका सबसे पहला और जरूरी कार्य है — अपने जीवन को बुराइयों के गड्ढे से बाहर निकालकर भलाइयों, सद्वृत्तियों एवं सद्गुणों में ढालना।

कलह

१. कलह दरिद्र का लक्षण है जिस घर, परिवार, समाज, नगर और राष्ट्र में कलह है वह पनप नहीं सकता।

२. विचार भेदों से तो कलह को अवकाश नहीं मिलता है पर वह मनोभेद और छींटाकशी से उमड़ जाता है।

३. जो व्यक्ति इन्द्रिय, मन और वाणी पर नियन्त्रण नहीं रख पाते वे ही कलह आदि को जन्म देते हैं।

कला-कलाकार

१. कला आदि साधन केवल कला के प्रदर्शन के लिए हो इसमें सार नहीं। उनसे त्याग, वैराग्य व अध्यात्म की प्रेरणा ली जाय, इसी में सार है।

२. जीना एक कला है। कला के बिना जीवन जीवन नहीं, मरण है।

३. जीने की तरह मरना भी एक कला है। अस्वस्थता और अशक्यता में फंसा एक मनुष्य जहां रोता है, बिलखता है, जीवन के लिए तरसता है, मनौतियां मानता है, वहां आत्मा की अमरता में विश्वास रखने वाला धर्मनिष्ठ मृत्यु के सामने धैर्य और हिम्मत के साथ सीना तानकर खड़ा हो जाता है।

४. कला का सत्य स्वरूप है—जीवन के अन्तरतम की सज्जा, परिष्कार या संस्कार।

५. जीवन में आध्यात्मिक कला का विकास करने के मार्ग हैं—श्रवण, दर्शन, ग्रहण और आचरण में कला

का समावेश ।

६. काव्य-कला की सृष्टि आत्म प्रेरणा का प्रतिफल है ।

७. कला गूढ़ की अभिव्यक्ति है । गूढ़ को अभिव्यक्त करने वाला कलाकार है ।

८. नीरस को सरस, दुःख को सुख और कुछ भी नहीं को सब कुछ बनाने वाला कलाकार है ।



कल्याण

१. जीवन प्रामाणिक, हल्का व संयमित बनाना ही कल्याण का सोपान है ।

२. ज्ञान, दर्शन और चारित्र इन तीनों रत्नों की आराधना से कल्याण की अभिसिद्धि होती है ।

३. कल्याण तो तब होने वाला है, जब धर्म गुरूओं के द्वारा बताए गए मार्ग का अनुसरण किया जाएगा । उन्होंने जो पथ अपनाया है, उसे अपना पथ बनाया जाएगा ।

४. जैसे खाना खा लेने के बाद उसे पचाने, हजम करने की नितान्त आवश्यकता होती है क्योंकि उसको पचाने से ही मनुष्य बलवान बनता है केवल खाने मात्र से नहीं । उसी प्रकार विमल विचार सुनने मात्र से ही कल्याण नहीं होता, उसको अपने जीवन में रमाने, आत्मसात करने से जीवन विकास होता है ।

५. चाहे कोई व्यक्ति मन्दिर में जाए, पूजा करे, सामायिक करे, साधुओं के दर्शन करे, लेकिन जब तक धर्म का सही रूप जीवन में नहीं आएगा, कल्याण होना दुष्कर है।

६. जिस प्रकार प्रशंसा करने वाले के लिए प्रशंसा करना कल्याण का कारण है उसी प्रकार आलोचना करना भी जिसकी आलोचना की जाती है उसके लिए कल्याण का मार्ग ही है।

७. मौलिक तत्त्व की आराधना में ही सच्चा श्रेयस् है, बाह्य उपकरणों में नहीं।

८. जीवन में संयम और नियमितता के बिना कल्याण नहीं है।

९. समाज व्यक्तियों का समूह है। अतः समाज कल्याण के लिए व्यक्ति कल्याण अपेक्षित है। व्यक्ति कल्याण के बिना समाज कल्याण असम्भव है।

कवि

१. कवि अभ्यास से नहीं बनता, प्रकृति ही उसकी निर्मात्री होती है। सही अर्थ में कवि बनने की सार्थकता तब है, जबकि वह विषमता-मूलक वातावरण को बदल कर नैतिकता-मूलक बना दे।

२. कवि समाज और राष्ट्र के निर्माता होते हैं। कवि की

रचना केवल मनोविनोद व हास्य के लिए ही नहीं होनी चाहिये। वह जन-जीवन विकास की प्रेरणा के लिए हो, जो जन मानस को छूते हुए विकास की एक सजग प्रेरणा दे सके।

कषाय

१. जब तक कषायों का अन्त नहीं, तब तक जन्म मरण का अन्त नहीं होता।

२. लोग चाण्डाल से परहेज करते हैं। किन्तु उनके घर में ही एक नहीं दो नहीं, बल्कि चार-चार-चाण्डाल (क्रोध, अभिमान, दम्भचर्या और लालच) विराजमान हैं। वास्तविक चाण्डाल तो कषाय है—गुस्सा है। गुस्से को छूने मात्र से हानि और विनाश का कोई पार नहीं रहता। घृणा गुस्से से करिये।

३. जितने ही विग्रह जगत में हैं वे सब कषाय चतुष्क के ही प्रभाव मात्र हैं।

कहनी-करनी

१. कहनी और करनी को समान बनाओ। आचार-विचार और व्यवहार शुद्ध करो। अपना व्यवहार ही दूसरों को खींच सकता है।

२. कहने, करने और समझने का भेद शिखर पर नहीं चढ़ने देता।

३. कहनी और करनी में जहां एकता है, जीवन का सत्त्व वहीं है।

४. यदि जन-जीवन को उठाना है तो कथनी और करनी को समान बनाना होगा।

५. करनी से पूर्व कथनी प्रकृति-विरुद्ध है। एक बच्चा भी तभी बोलता है, जब वह करना सीख लेता है। यह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।



कानून

१. आज कानून के बल पर लोगों की बुराई छुड़ाने की कोशिश की जाती है, लेकिन जो कार्य-हृदय परिवर्तन से बनता है वह कानून से नहीं होता। कानून से जहां व्यक्ति बचने की चेष्टा करता है वहां हृदय-परिवर्तन के द्वारा मनुष्य के दिल में बुराई के प्रति घृणा पैदा हो जाती है।

२. कानून बनाने वाले बनाते रहते हैं लोग उसकी शव-परीक्षा करते हैं, नाना रास्ते खोजते हैं।

३. समाज-सुधार के और राष्ट्र-सुधार के कानून बनते हैं, पर अपनी आत्मा को समझे बिना उनसे बनने का क्या है?

४. कानून या डंडे के बल पर मानव को मानव नहीं बनाया जा सकता।

५. कानून बुराई छोड़ने के लिए जोर डालता है किन्तु बुराई के प्रति घृणा पैदा नहीं करता।

कायरता

१. भीरूता व्रत पालने में बाधक है ।

२. परिस्थितियों के हाथ बिक जाना कायरता है ।

३. परीक्षा के समय कष्टों को देखकर घबराना कायरता है ।

४. परिस्थितियों की दुहाई देकर न्याय के मार्ग पर स्थिर न रह सकने की बात, कहने वाले सचमुच हीन बल है, कायर है, असाहसिक है ।

५. घबराना कायरता है, हिंसा है ।

६. दूसरों को सताने वाला तो बहुत बड़ा कायर, कमजोर और बुजदिल है ।

७. कठिनाइयों और बाधाओं को देखकर अपना धैर्य छोड़ सत्पथ से विचलित हो जाना मनुष्य की कायरता की निशानी है ।

८. प्रतिकूल परिस्थितियों के समक्ष घुटने टेकना मानव की सबसे बड़ी कमजोरी है ।

९. कायरता अहिंसा का अंचल तक नहीं छू सकती ।

१०. हिंसक बने रहना पहले दर्जे की कमजोरी है ।

११. हिंसा का उत्तर हिंसा से देने में कोई वीर वृत्ति नहीं है।

१२. व्रत पालन के लिए अपने आपको चहार दिवारी में बन्द करना क्या कायरता नहीं है ?

१३. यह कहना कमजोरी का द्योतक है कि धर्म और व्यापार साथ नहीं चल सकता ।

कार्यकर्त्ता

१. प्रत्येक कार्यकर्त्ता में चरित्र, लगन और काम करने की उचित तरकीब का होना जरूरी है । जिस मिशन में वह काम करे, तत्सम्बन्धी तत्त्वज्ञान का होना भी उसको अपेक्षित है ।

२. कार्यकर्त्ता वही बन सकता है जो अपनी मस्तिष्क शक्ति से अधिक पुरूषार्थ को काम में लाता है ।

३. एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता या कार्यकर्त्री का जीवन विनय, त्याग, सरलता और नैतिकता से विमंडित होना चाहिए।

४. भला जो अपने आप में समाधिस्थ नहीं है, वह दूसरों का क्या कल्याण कर सकेगा ? अतः सबसे पहले कार्यकर्त्ता को स्वयं निःसंशय होना है ।

५. आज ज्ञानी या पंडितों की उतनी अपेक्षा नहीं है, जितनी क्रियाशीलों की, कर्मठों की, करने वालों की।

६. कार्यकर्त्ता अपनी वाणी को अपने कार्य में देखे तो उसका अधिक प्रभाव पड़ेगा।

क्रांति

१. क्रांति एक ऐसा दर्पण है जिसमें राष्ट्रीय भावनाओं की प्रतिच्छाया सहज ही अंकित होती है।
२. कौनसा राष्ट्र कितना चेतनशील है और कितना मूर्च्छित है यह हमें समय-समय पर होने वाली क्रांतियां बतायेंगी।
३. वही क्रांति स्थायीत्व ग्रहण कर सकती है जो व्यक्ति-व्यक्ति के हृदय की आह को दूर करने की क्षमता रखती है।
४. क्रांति किसी पर बलात् नहीं थोपी जा सकती। बलात् क्रांति का अर्थ होता है—प्रति क्रांति के निमन्त्रण।
५. जहां रक्त क्रांति परिस्थितियों को केवल बदलती है वहां अहिंसक क्रांति समस्या का समूल-उन्मूलन चाहती है।
६. आज की क्रांति आने वाले समाज के लिए प्रमाणित होती है।
७. क्रांति का सूत्र सदा जनता के हाथ में रहता है।

क्रूरता

१. क्रूरता सब अन्यायों का मूल है ।

२. कोई किसी की हत्या करता है या उसमें भाग लेता है, किसी मनुष्य को अछूत मानता है, किसी का तिरस्कार करता है यह सब अपने अन्तस्थल में छिपी हुई क्रूरता के परिणाम हैं ।

३. क्रूरता का प्रतिफल क्रूरता और विरोध का प्रतिफल विरोध है ।

४. अधिकारों के उपार्जन में क्रूरता बरतनी पड़ती है । उनकी सुरक्षा के लिए और भी अधिक ।

५. अधिकार-दान या धन-दान क्रूरता के ऊपर आवरण है ।

६. आर्थिक प्रलोभनों का प्रभाव इतना भयंकर होता है कि उसके प्रभाव में अच्छा व्यक्ति भी क्रूर बन जाता है ।



क्रोध

१. क्रोध आत्मा को दुःख पहुंचाने वाले दुर्गुणों में अपना मुख्य स्थान रखता है। क्रोध आत्मा का अधःपतन करता है उसे भव-भव में भटकाता है।
२. घास-फूस रहित स्थान में पड़ी हुई अग्नि भक्ष्य न पाकर अपने आप शान्त हो जाती है। इसलिए दुष्ट और गुस्सेबाजों से भिड़ने में कोई लाभ नहीं होता। उनसे तो दूर रहने में ही फायदा है।
३. क्रोध में विवेक नहीं रहता, धैर्य छूट जाता है।
४. क्रोध के वश बने व्यक्ति सचमुच दया के पात्र हैं।



खतरनाक

१. स्वप्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना और स्वनिन्दा सुनकर नाराज होना दोनों ही खतरनाक हैं।

खानपान

१. अशुद्ध, तामसिक खानपान विकारोत्तेजक होता है। जीवन उससे उत्तरोतर गिरावट की ओर जाता है।

२. व्यक्ति का जीवन आहार पर निर्भर होता है। जीवन की व्यवस्था बनी रहे—यह आहार का मुख्य कार्य है। आहार का सम्बन्ध स्वास्थ्य से, स्वास्थ्य का सम्बन्ध मानसिक सन्तुलन से और उसका सम्बन्ध जीवन की सुव्यवस्था से है। इससे भी महत्त्वपूर्ण बात है कि कभी कभी शरीर के लिए लाभकारी वस्तुएं भी मानसिक वृत्तियों के लिए लाभकारक नहीं होती। इसलिए आहार के चुनाव में केवल शारीरिक स्वास्थ्य की ही नहीं, मानसिक स्वास्थ्य की भी दृष्टि होनी चाहिये।

३. मानसिक विकृत्तियां पैदा कर शरीर को स्वस्थ बनाये रखने की दृष्टि जघन्य है। मांसाहार मानसिक क्रूरता का प्रतीक है।

गंवार

१. गंवार वह है जिसके आचरण, व्यवहार, खानपान और विचार बुरे हैं। फिर चाहे वह ब्राह्मण हो, वैश्य हो या अन्य कोई भी।



गणतन्त्र

१. अगर आपको गणतन्त्र-दिवस सफल बनाना है तो उसकी भूमिका चरित्र पर आधारित करनी होगी।

२. गणतन्त्र-दिवस मनाने का यही मतलब है कि व्यक्ति अपने जीवन को टटोले, जीवन में पड़ी खाइयों को मिटाये।



गलती

१. छोटी-छोटी गलतियां ही बड़ी-बड़ी गलतियों के द्वार खोलती हैं ।

२. वास्तव में कोई भी गलती छोटी नहीं है, गलती मात्र बड़ी होती है, पर उसकी अपेक्षा द्वारा छोटी मान ली जाती है ।

गुण

१. व्यक्ति की उच्चता और नीचता का माप-दण्ड गुण से होता है, जाति से नहीं ।

२. गुणों का विकास जाति की अपेक्षा नहीं रख कर व्यक्ति की योग्यता पर निर्भर रहता है ।

३. व्यक्ति नहीं पूजा जाता, गुण पूजे जाते हैं ।

४. आत्म ऋजुता, सरलता, अकुटिलता आदि जीवन को परिमार्जित करने वाले सद्गुण हैं ।

५. अच्छाई की कसौटी एकमात्र सद्गुण है ।

६. विनय, शालीनता, सरलता, सादगी, सत्य, निष्ठा आदि सद्गुणों में वह शक्ति है जो जीवन को सच्ची प्राणवत्ता देती है ।

७. ऊंच नीच की विवक्षा जाति के आधार पर नहीं, गुणवाद से ही होनी चाहिये ।



घृणा

१. किसी व्यक्ति से घृणा करना महान् पाप है ।

२. यदि मैला उठाने से ही व्यक्ति घृणित हो जाता है तो सबसे पहले घृणित होंगी माताएं, जो नित्य बाल-बच्चों का मैला उठाती हैं ।

३. किसी के प्रति घृणा करने वाला क्या सबके प्रति घृणा नहीं करता ?

४. मनुष्य घृणा का आरम्भ किसी दूसरे से करता है पर चलते-चलते अपनों तक तथा अपने तक पहुंच जाता है ।

५. मनुष्य-मनुष्य के प्रति घृणा करे इससे बढ़ कर और अमनुष्यता क्या होगी ?

६. एक मनुष्य दूसरे मनुष्य के प्रति घृणा का मनोभाव रखे यह कितनी दयनीय मनोदशा है ।

७. प्रेम का अभाव होता है, तभी घृणा बढ़ती है ।

८. घृणा करो बुराई से, बुरे से नहीं; पाप से, पापी से नहीं ।

९. गन्दगी को गन्दगी समझना और उससे बचना तो ठीक है, पर उससे घृणा करना उचित नहीं ।

१०. आदमी के काम अच्छे बुरे हो सकते हैं, पर व्यक्ति घृणित नहीं हो सकता ।

११. घृणा बुरे आदमी के प्रति न होकर, बुराई के प्रति होनी चाहिए, क्योंकि व्यक्ति बुरे से अच्छा बन सकता है, पर बुराई कभी अच्छाई नहीं बन सकती ।



चरित्र

१. चरित्र-सम्पन्नता के बिना उच्चपद जीवन के लिए भार-भूत है ।

२. संसार को विनाश के मुख से बचाना है तो चरित्र का उत्थान करना होगा ।

३. सत्श्रद्धा और सद्ज्ञान के सहारे पनपने वाला चरित्र दिव्य जीवन का प्रतीक है ।

४. चरित्र जीवन की सम्पत्ति है। जिन्होंने इसे सम्भाल कर नहीं रखा उनके कार्यक्रमों की सफलता में बहुत कुछ असम्भावनाएं हैं।

५. चरित्र मानव जीवन की मूल-पूंजी है।

६. चरित्र ही तो जीवन की सच्ची निधि है, सच्चा वैभव है।

७. चरित्र की उत्कृष्टता, मातृहृदय का स्नेह और बुराई से बचाने का सहज आकर्षण बाल-बच्चों को अवश्य ही चरित्रनिष्ठ बना सकता है।

८. उच्चता और नीचता की कसौटी जाति और वर्ण नहीं, उसकी कसौटी है—चरित्र व अन्तर्वृत्तियां।

९. आज संसार एकमात्र अभाव के कारण ही दुःखी नहीं अपितु मुख्य कारण है नैतिक अथवा चारित्रिक पतन।

१०. चरित्र के लिए धर्म स्थान और घर दो नहीं हो सकते।

११. चरित्र का सम्बन्ध केवल व्यापार शुद्धि तक ही सीमित नहीं है। उसका सम्बन्ध उन सब कार्यों से है, जो मनुष्य को हिंसक बनाते हैं।

१२. खाद्य पदार्थों में मिलावट करने वालों को यदि चरित्रवान नहीं कहा जा सकता तो आणविक अस्त्रों का निर्माण करने वालों को भी चरित्रवान नहीं कहा जा सकता।

१३. शोषण, अन्याय, असहिष्णुता, आक्रमण, दूसरे के प्रभुत्व का अपहरण या उसमें हस्तक्षेप और असामाजिक प्रवृत्तियां—ये सब चरित्र के दोष हैं।

१४. चरित्र और शान्ति दो नहीं, एक ही सत्य की द्विरूप अभिव्यक्ति है। चरित्र है वहां शान्ति और शान्ति है वहां चरित्र।

१५. दुःखी होने का मुख्य कारण है चारित्रिक पतन ।

१६. यदि दृष्टि बिन्दु ठीक रहे तो चरित्र सुधार में कोई विशेष कठिनाई नहीं होती पर उसके बिना सदाचार की आशा कैसी

१७ बिना चरित्र बल के कोई भी संस्था अधिक दिनों तक चल नहीं सकती ।

१८. चरित्र न तो किसी दूसरी जगह से आता है न खरीदा ही जा सकता है । वह अपने आप में ही है और स्वयं ही उसका विकास किया जा सकता है ।

१९. चरित्रवान के सम्पर्क में रहने से चरित्र की शुद्धि हो सकती है ।

२०. अंक के बिना शून्य का कोई मूल्य नहीं होता—यह आप जानते हैं और यह आपको जानना है कि चरित्र निर्माण की योजना के बिना शेष सारी योजनाएं अर्थ शून्य हो जायेगी ।

२१. चरित्र विकास के बिना कोई भी समाज और राष्ट्र उन्नत नहीं हो सकता ।

२२. चरित्र जीवन की गति है ।

२३. चरित्र जीवन की बुनियाद है । जीवन का ऊंचा प्रासाद उसी पर आधारित है ।

२४. चरित्र के स्तर का मापदण्ड अहिंसा है ।

२५. शस्त्र में निष्ठा रखने वाला चरित्र निष्ठ नहीं हो सकता ।

२६. भयंकरता शस्त्र में नहीं, व्यक्ति के चरित्र में होती हैं । शस्त्र तो उसका प्रतिबिम्ब मात्र होता है ।

२७. ग्रन्थों के ग्रन्थ रट डाले, बड़ी-बड़ी उपाधियां पाली, पर यदि जीवन में चरित्रशीलता नहीं आई तो यह सारा ज्ञान बैल की पीठ पर लदे पुस्तकों के बोरों जैसा है।

२८. ज्ञान श्रद्धा के कंधे पर बैठे, क्योंकि वह पंगु है। श्रद्धा चले और ज्ञान सम्यक् दर्शन दे। इन दोनों के सहयोग से जो क्रिया (आचरण) होगी वह सम्यक्चरित्र है।

२९. संसार को विनाश के मुख से बचाना है तो चरित्र का उत्थान करना होगा।

चोरी

१. अपने काम धन्धे में ईमानदारी नहीं बरतना चोरी है।

२. अपने जिम्मेवारी के काम से दिल चुराना चोरी है।

जयन्ती

१. जन्म-जयन्ती की बनिस्पत चरम-जयन्ती का विशेष महत्व है। जन्म-जयन्ती में जन्म दिन के बाद का भविष्य अनिश्चितता की सीमा में बंधा रहता है। जबकि चरम-

जयन्ती में चरम-दिवस तक के जीवन का पूर्ण उपसंहार और जीवन की घटनाओं का सजीव और असंदिग्ध लेख सामने मौजूद रहता है।

२. जन्म-जयन्ती की अपेक्षा दीक्षा-दिवस, बोधि-दिवस और निर्वाण-दिवस का विशेष महत्त्व रहता है। जन्म के सामने जीवन का सारा भविष्य रहता है और निर्वाण के दिन सारा भविष्य अतीत हो जाता है।

जातिवाद

१. ऊंचापन और नीचापन जाति पर नहीं, कर्म पर आधारित है।

२. जातिवाद अहंकार का पोषण करता है और हीनता को जगाता है।

जिज्ञासा

१. श्रवण के पहले जिज्ञासा का होना अत्यन्त आवश्यक है। जिज्ञासा के अभाव में केवल सुनने मात्र से ही कोई उपलब्धि नहीं हो सकती।

२ आज विश्व के देशों में क्या हो रहा है, आदि आदि बातें जानने को मानव उत्सुक रहता है लेकिन स्वयं अपनी तरफ नहीं देखता।

३. हर मनुष्य को जिज्ञासु होना चाहिये, जिगीषु नहीं।

जिम्मेदारी

१. जिम्मेदारी एक ऐसी चीज है, जो तोली नहीं जा सकती और मापी नहीं जा सकती। किन्तु जो इसको वहन करते हैं, उन्हें ही जिम्मेदारी का वजन मालूम होता है।

जीवन

१. वह जीवन सूना है जो अपनी ही सोचे।

२. जीवन वह है जो अध्यात्म दृष्टि से जागृत एवं उद्बुद्ध है। जो धन, वैभव, सत्ता और अधिकार के भूल-भूलैया में गुमराह न बन संयम, सात्विकता और चारित्र्य के मार्ग पर अग्रसर है।

३. त्याग और भोग जीवन के दो पहलू होते हैं। मुख्य पक्ष त्याग है, भोग गौरण और नगण्य है। त्याग को मुख्यता और भोग को तिलांजली देने से ही व्यक्ति, समाज और राज्य की समस्त व्यवस्थायें सुन्दर रूप से संचालित हो सकती हैं।

४. वर्तमान जीवन शुद्ध नहीं हुआ तो अगला जन्म शुद्ध कैसे होगा ?

५. जीना ही जीवन नहीं बल्कि संयमपूर्वक जीना ही जीवन है। मरना ही मृत्यु नहीं बल्कि भ्रष्टाचार में जीवन को खपाना ही मृत्यु है।

६. नदी तब तक नदी है जब तक उसमें संयम है। जीवन भी तब तक जीवन है जब तक जीवन में संयम है।

७. सफल जीवन के चार तत्त्व हैं — शान्त जीवन, सन्तुष्ट जीवन, पवित्र जीवन और आनन्दमय जीवन।

८. जीवन की सार्थकता धन, वैभव और मालमता की पर्वत राशियां खड़ी कर लेने में नहीं है, वह तो उज्ज्वल-आचरण, सात्विक वृत्ति और निश्छल व्यवहार में है।

९. जगत में सबसे अधिक दयनीय वह है जिसका जीवन विकारों में फंसा है, जिसकी वृत्तियां असत्य, हिंसा, प्रमाद और मात्सर्य से भरी हैं, जो दुर्व्यसनी है।



जीवन का लक्ष्य

१. रोटी और रोजी ही जीवन का लक्ष्य नहीं है।
२. मानव जीवन का ध्येय संयम की साधना है न कि विलास।
३. अन्तरतम का परिशोधन ही जीवन का लक्ष्य है।
४. जीवन में सत्य की खोज की जाय और वह सत्य जीवन में उतरे। आचरण में आये।
५. व्यक्ति आत्म-दुर्बलता के कारण भौतिक अभिसिद्धियों में फंस जीवन के सही लक्ष्य से हटता है। यह उसकी बहुत बड़ी भूल है जो उसे गिरावट की ओर ले जाती है।
६. जीवन का साध्य है—आत्म स्वरूप को समझना।
७. जीवन का लक्ष्य आनन्द है। आनन्द शान्ति के बिना मिलता नहीं। हृदय में अशान्ति है तो आनन्द की कल्पना भी व्यर्थ है।
८. मानव जीवन बहुमूल्य जीवन है। इसका चरम ध्येय है—आत्म स्वरूप की प्राप्ति, आत्मा पर लगे कर्म आवरणों के परिमार्जन द्वारा शाश्वत शान्ति का साक्षात्कार।

९. मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य भौतिक अभिसिद्धियाँ नहीं अपितु मोक्ष है।

जैन और जैनधर्म

१. जिन (वीतराग) के द्वारा बताये मार्ग को ग्रहण करने वाला या उस पर श्रद्धा रखने वाला जैन है।

२. जैन वह है जो अपनी आत्मा को जीतता है।

३. पीढ़ियों से जैनी कहलाने वाले में यदि जैनत्त्व के आदर्श है तो सही रूप में वह जैनी नहीं है।

४. जैन धर्म का मंतव्य अनेकान्त है। अनेकान्त का अर्थ है सापेक्ष दृष्टि।

५. भाषावाद और जातिवाद में जैन धर्म विश्वास नहीं करता। उसके सिद्धान्तानुसार एक गुणयुक्त चाण्डाल भी पूज्य है और गुण शून्य ब्राह्मण भी अवन्द्य।

६. जैन धर्म में व्यक्ति का महत्त्व नहीं, गुण का महत्त्व है, वीतरागता का महत्त्व है। उसमें पर विजय का नहीं, आत्म विजय का महत्त्व है।

७. जैन धर्म में यहां तक व्यापकता है कि एक हरिजन भी मुनि और वीतरागी बन सकता है।

८. जैन धर्म किसी व्यक्ति या जाति परक नहीं पर गुण और क्रिया परक है ।

९. जैन धर्म स्याद्वादी है, वह कहता है सबका समन्वय करो, सबको समझो, उदार बनो, विशाल बनो, छोटे-छोटे मत भेदो को लेकर लड़ो मत, सहिष्णु बनो।

जैन तत्त्व

१. तत्त्व शब्द में नहीं, आचरण में रहता है ।

२. जैन तत्त्व का उपदेश है—पुरुषार्थी बनो ।

३ जैन तत्त्व किसी व्यक्ति के नहीं, ये तो वीतराग के तत्त्व हैं ।

जैन दर्शन

१. जैन दर्शन आत्म कर्तृत्ववादी है ।

२. जैन दर्शन पुरूषार्थवादी दर्शन है ।

३. जैन विचार धारा की बहुमूल्य देन है संयम ।

४. जैन दर्शन भारत के प्राचीन ऋषि-महर्षियों के विचारों की अनुपम निधि है।

५. जैन दर्शन का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जो विश्व बन्धुत्व का है, वह हमारी अमूल्य विरासत है।

६. जैन दर्शन अनेकान्तवादी दर्शन है। अनेकान्त समन्वय का प्रतीक है।

७. प्रत्येक आत्मा स्वतन्त्र है। उनके अलग-अलग अस्तित्व हैं। व्यक्ति-व्यक्ति के पृथक्त्व होने से आत्मा अनेक है और प्रत्येक आत्मा अनन्त धर्म वाली है, प्रत्येक में चेतन गुण का अस्तित्व है, प्रत्येक को सुख दुःख का अनुभव होता है, प्रत्येक दुःख की अनभिलाषा और सुख की अभिलाषा रखती है, प्रत्येक में आत्मत्व है। इस तरह जैन दर्शन एकान्तवाद व अनेकान्तवाद दोनों सिद्धान्तों को अपनी अपनी जगह सही मानता है।

८. जैन दर्शन के स्वतन्त्र आत्मवाद के सिद्धान्त ने भारतीय मानस को इतना प्रभावित किया कि व्यक्ति स्वातन्त्र्य का स्वर जन-जन का मंत्र पाठ बन गया।

९. जैन दर्शन राग-द्वेष को जीतने वालों द्वारा आविष्कृत तत्त्वज्ञान का मार्ग है।

१०. जैन दर्शन में जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष है। जिसे उत्कृष्ट आत्म-साधना पूर्वक प्राप्त करने का जितना अधिकार पुरुषों को है, उतना ही नारी को भी है।

११. जैन दर्शन का चरम लक्ष्य मोक्ष है। इसके लिए अंतरतम के परिमार्जन की आवश्यकता है।

१२. जैन दृष्टिकोण से कला क्षयोपशम भाव है अर्थात्

सत्संस्कारों का प्रतिफल है, पर उसकी उपादेयता-अनुपादेयता उसके उपयोग पर निर्भर है।

१३. जैन दर्शन पुनर्जन्म, आत्मा, ईश्वर, कर्मफल, मुक्ति और स्वर्ग-नर्क पर विश्वास करता है। उसकी मान्यता है— जब तक आत्मा कर्मशरीर-बन्धन युक्त है, तब तक वह बद्धात्मा और इनसे मुक्त ही परमात्मा है।

१४. स्याद्वाद, अपेक्षावाद, नयवाद या अनेकान्तवाद जैन दर्शन की निरूपण पद्धति है।

१५. जैन दर्शन ईश्वर का अस्तित्व मानते हुए भी आत्म-पुरूषार्थ पर ही बल देता हैं। कर्ता-हर्ता कोई अन्य ईश्वर न मान कर उसके स्थान पर आत्मा को ही कर्ता-हर्ता स्वीकार करता है।

१६. जैन दर्शन जीवन की या यों कहूँ विश्व भर की गुत्थियां सुलझाने के लिए दो दृष्टियों का निरूपण करता है— एक आचार और दूसरा विचार। आचार और विचार का गहरा सम्बन्ध है। एक के बिना दूसरा अधूरा है।

१७. जैन दर्शन अनेकान्तवाद पर आधारित है, जो विश्व की समस्त विचारधाराओं के समन्वय और सामंजस्य का समुचित पथ प्रस्तुत करता है। वह बताता है कि एक ही वस्तु को अनेकों अपेक्षाओं अथवा दृष्टियों से परखा जा सकता है।

१८. जैन दर्शन बताता है कि कोई मनुष्य यदि जैन बनना चाहता है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह विजेता के पथ पर अपने कदम बढ़ाये।

१९. समूचे जैन दर्शन में सबसे बड़ा तत्त्व जीवन शोधन की प्रक्रिया का है।

जैनागम

१. जैन-आगम ज्ञान-विज्ञान के अमूल्य निधान हैं। जीवन को विकास के निर्मल मार्ग पर ले जाने के वे अमोघ साधन हैं।



झूठ

१. यदि मनुष्य अपने घर में झूठ बोलने लग जाय तो परिवार नाम की कोई चीज ही नहीं रह जायेगी।

२. समाज का आधार भी आखिर सत्य है। यदि मनुष्य समाज में सच्चा नहीं रहे तो समाज छिन्न-भिन्न ही रहेगा।

३. वही राष्ट्र समुन्नत होगा जहां के निवासी झूठ नहीं बोलते।



तपस्या

१. तपस्या आत्म-परिष्कार के लिए सफल साधन है।

२. तपस्या आत्म-शक्ति को बढ़ाती है आत्म तेज उदीप्त करती है। अन्तर शुद्धि का यह अमोघ साधन है।

३. तपस्या पूर्व संचित कर्म बन्धनों को तोड़ती है। अर्थ, वैभव पुत्र व सांसारिक सुख जैसी भौतिक अभिसिद्धियां उसका सही लक्ष्य नहीं। तपस्या का सही और शुद्ध लक्ष्य है जीवन शुद्धि।

४. तपस्या का सही अर्थ मानव के अन्तरतम में व्याप्त विकृत्तियां — विजातीय तत्त्वों को निकाल कर बाहर करना है।

५. वह तप, तप नहीं जिस तप के कारण औरों की हत्या होती है।

६. तप वही है जिससे किसी को भी संताप और किसी का हनन न हो।

७. राग, द्वेष, प्रमाद और स्वार्थरहित जितने आचरण हैं

वे सब तपस्याएं हैं ।

८. तपस्या से मनुष्य को कष्ट जरूर होता है, लेकिन वह कष्ट परम सुख की ओर ले जाने वाला है ।

९. कोरी तपस्या से अभीष्ट लाभ तब तक सम्भव नहीं जब तक क्षमाशीलता नहीं हो ।

तृष्णा

१. तृष्णा अनन्त है, संसार की वस्तुएं सीमित हैं, परिमित हैं।

२. पदार्थों का विस्तार हुआ, फलतः परिभोग बढ़ा, लालसाएं बढ़ी ।

३. इच्छा स्वल्प होती है तब हिंसा अपने आप स्वल्प हो जाती है । आरम्भ आवश्यकता के सहारे चलता है, तब वह असीम नहीं बनता । उसकी गति इच्छा के अधीन हो जाती है, तब वह सीमातीत बनता है ।

४. जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकती है किन्तु लालसाओं की पूर्ति कभी सम्भव नहीं ।

५. ज्यों-ज्यों व्यक्ति पदार्थों के माध्यम से तृप्ति की ओर बढ़ना चाहता है अतृप्ति की परम्परा और लम्बी बनती चलती है ।

६. ज्यों-ज्यों साधनों का और अधिक विस्तार होगा त्यों-त्यों आवश्यकताएं भी और आगे बढ़ती चली जायेगी

फिर मानव इतना दिग्मूढ़ बन जायेगा कि वह सही मार्ग पर पहुंच न सकेगा।

७. तृष्णा का ग्रास बना हुआ मानव सार्वभौम चक्रवर्ती होने पर भी सुखी नहीं होता और सन्तोषी मानव अकिंचन होते हुए भी सुखी रहता है।

८. हिंसा, परिग्रह आदि जब जनता के जीवन निर्वाह की परिधि को लांघकर तृष्णा के क्षेत्र में आ जाते हैं, तब सामूहिक अशान्ति का जन्म होता है।

९. जहां लालसा है वहां दुःख निश्चित है।

१०. जिसको ज्यादा तृप्तियां होने लगती है, उसकी अतृप्तियां भी उसी वेग से बढ़ने लगती है।

११. पदार्थ के प्रति मानव में जो अत्याधिक लोलुप वृत्ति पैदा हो गई है, वह उसे औचित्य-अनौचित्य, न्याय-अन्याय की परख नहीं करने देती।

त्याग

१. धन से त्याग सदा ऊंचा रहा है और रहेगा।

२. त्याग का महत्त्व इसलिए है कि भविष्य में धन को प्राप्त करने के प्रति आकर्षण मिटता है।

३. सही रूप में त्यागी वही है जो सर्व साधन सामग्रियों के उपलब्ध होने पर भी उनको ठुकराता है और त्याग के मार्ग पर आगे बढ़ता है ।

४. अध्यात्म जगत में सम्राटों की, राजाओं की और धन कुबेरों की प्रतिष्ठा नहीं किन्तु त्यागियों की प्रतिष्ठा है ।

५. पुरुष जाति में जितनी त्याग निष्ठा है उससे कहीं अधिक नारी जाति में आज भी पायी जाती है ।

६. सादगी व सरलता निर्धनता की पराकाष्ठा नहीं किन्तु त्याग की महिमा है ।

७. संग्रह की वृत्ति तीव्र होती है, तब त्याग शाब्दिक बन जाते हैं ।

८. आजकल लोग आडम्बर, आरम्भ व फिजूल खर्ची में होड़ करने के लिए तैयार रहते हैं । उन्हें चाहिये कि वे त्याग में होड़ करें ।

९. त्याग ही सच्ची सेवा, सच्चा उत्थान और सच्ची जागृति है ।

१०. जहां भोग छूटने पर भोगी दुःख पाता है, वहां त्यागी आनन्द का अनुभव करता है । त्यागी स्वयं भोगों को ठुकराता है, भोगी उनके लिए मारा-मारा फिरता है ।

११. जिन्हें त्याग का अभ्यास नहीं उन्हें नश्वर भोग लीलाओं के आवर्तन-प्रत्यावर्तन में बड़ी यातनाएं झेलनी पड़ती हैं ।

१२. संयतता का मार्ग त्याग है इसलिए दान की नहीं, त्याग की वृत्तियों की आवश्यकता है ।

१३. उपलब्ध सामग्री का त्याग करना त्याग है और अप्राप्त को प्राप्त न करना भी त्याग है ।

१४. त्याग का आदर्श तो वह है कि मनुष्य अपनी आवश्यक अनिवार्यताओं से अधिक रखने की चेष्टा न करे।

१५. आत्म दमन के लिए किये गये अनशन से अगर व्यक्ति की मृत्यु हो जाये तो वह त्याग है।

१६. जितना-जितना आत्म संयम है, असद् आचरणों का परित्याग है, वह निर्वृत्ति है।

१७. त्याग के पांच मार्ग हैं—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, और अपरिग्रह। इनको आदर्श मान कर उन्हें यथाशक्ति अपने जीवन में उतारना होगा। तभी मानव सुखी होगा और उसे शान्ति मिलेगी।

१८. त्याग की परम्परा अक्षुण्ण रहने से ही जीवन की विषम और गहन खाइयों को पाटा जा सकता है।

१९. प्राप्त भोग-सामग्री को ठुकरा कर संयम मार्ग में प्रवृत्त होना ही सच्चा त्याग हैं।

२०. पूंजी का आनन्द क्षणिक है और त्याग का आनन्द स्थायी है।



दया—दान

१. संसार यह देखना नहीं चाहता कि आप कितना दान, पुण्य और जाप करते हैं। वह तो यह देखना चाहता है कि आपके आचरण कितने पवित्र हैं? शोषण का चक्र चलाते हैं या मानवता का मूल्य आंकते हैं?

२. जहां दया नहीं वहां धर्म नहीं है। पर दया के नाम पर पाप और अत्याचार पलते हैं। लोगों ने गहराई में उतरने का प्रयास तो कम किया और केवल ऊपर को पकड़ा। किसी को टुकड़ा देना और मरते को बचा देना ही धर्म माना।

३. अन्याय और बुराईयों से पैसा पैदा कर उस पाप से मुक्ति पाने के लिए दान देना चाहते हैं। जनता आपके दान की भूखी नहीं है। वह चाहती है अन्याय और अत्याचार की कमाई बन्द हो। जनता दान नहीं अधिकार मांगती है। मजदूर दान नहीं अपने श्रम का फल चाहता है।

४. दया दूसरे की नहीं, अपनी ही होती है। आप अपने पर ही दया करके दूसरों को कष्ट पहुंचाना छोड़ दें।

५. दान ऐसा देना चाहिये जिससे अहिंसा का पोषण हो। दया ऐसी करनी चाहिये जिसमें हिंसा का समावेश न हो। वह दान-दान नहीं जिससे अहिंसा का पोषण न होता हो। वह दया-दया नहीं जिसके करने में हिंसा हो।

६. लौकिक दया का मुख्य आधार समाज व्यवस्था एवं दुःखित व्यक्तियों का अनुग्रह है। उसमें हिंसा-अहिंसा का विचार नहीं किया जाता। इसलिये वह लोकोत्तर दया से दूसरे शब्दों में अहिंसा से पृथक् है।

७. व्यक्ति की आत्मा को उन्नत और उज्ज्वल बनाना ही विशुद्ध दया का सही लक्ष्य है।

८. जिसे तू मारना चाहता है, वह तू ही है—यह दया का मौलिक मंत्र है।

९. अपनी ओर से किसी प्राणी को न मारना, संतप्त न करना और क्लेश न देना तात्त्विक दया है।

१०. जहाँ आध्यात्मिक दया का सम्बन्ध हृदय परिवर्तन से है वहां लौकिक दया का सम्बन्ध केवल बचा लेने मात्र से ही है, हृदय परिवर्तन से नहीं।

११. शोषण का पोषण करने वाले दानियों की अपेक्षा अदानी बहुत श्रेष्ठ हैं।

१२. शोषण का द्वार खुला रख कर दान करने वाला, हजारों को लूट कुछ एक को देने वाला कभी धन्य नहीं हो सकता।

१३. केवल देना ही दान नहीं है। दान में दाता, पात्र और दान की वस्तु का विवेचन और शुद्धि अत्यन्त आवश्यक और अपेक्षित है।

१४. जिस प्रकार कृषि में बीज, खेत की मिट्टी और खेती के

नियमोपनियम आवश्यक होते हैं उसी तरह दान में दाता, देय और पात्र की उपयुक्तता तथा पात्रता आवश्यक है।

१५. जिस व्यक्ति में सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन और सम्यक्-चारित्र मिलता है, चाहे वह किसी भी सम्प्रदाय या पंथ का हो वह शुद्ध साधु व शुद्ध साध्वी है और उसको दान देने में एकान्त-धर्म है।

१६. मरने वाला मर कर भी कुछ खोता नहीं, मारने वाला जीवित रह कर भी खोता है। मरने वाले का प्राण नाश होता है मारने वाले की आत्मा का।

दरिद्रता

१. पैसा नहीं होने से ही कोई दरिद्र नहीं हो जाता। वास्तव में तो अनाचार ही दरिद्रता है।

२. यदि पैसा नहीं होने से कोई दरिद्र हो जाता, तो सबसे बड़े दरिद्र तो साधु होते। पर उनके सामने तो सम्राटों के भी सिर झुक जाते हैं।

दर्शन

१. दर्शन जीवन की व्याख्या है, विश्लेषण है, सत्य की खोज है।
२. दर्शन का तात्पर्य है—जीवन की खोज, अन्तरतम का अन्वेषण।
३. वैदिक, जैन और बौद्ध तत्त्वज्ञान के रूप में भारतीय दर्शन की त्रिवेणी दार्शनिक जगत में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।
४. भारतीय दर्शन का चरम लक्ष्य है—आत्म स्वरूप की प्राप्ति, समस्त बन्धनों से छुटकारा। सत्, चित् और आनन्द का साक्षात्कार। भारतीय दर्शन की यह विशेषता रही है कि वह साध्य की शुद्धि पर जितना जोर देता है, साधन की शुद्धि पर भी उतना ही बल देता है।
५. धर्म वह चीज है जो व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन का विकास करता है।
६. सभी दर्शनों का मूल बीज है—दुःख के अभिघात सुख के लाभ की आकांक्षा।

७. दर्शन केवल विद्वानों तथा विचारकों के दिमागी व्यायाम का विषय नहीं, यह तो व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन का एक आवश्यक और व्यवहारिक पहलू है।

८. दर्शन संसार की आध्यात्मिक भूख को शान्त करने का एक अमोघ साधन है।

९. जो दर्शन तत्त्वों पर टिका हुआ होता है, उसके अनुयायी चाहे कम हों पर मूल्य की दृष्टि से वह अधिक वजनदार होता है।

१०. भारतीय दर्शन निर्माण और सृजन का दर्शन है। विध्वंस का नहीं। वह लोक जीवन को एक ऐसे निर्मिति में ढालना चाहता है जो सत्य, शौच, सदाचरण की निर्मिति है। यदि एक शब्द में कहूँ तो संयम की निर्मिति है।

११. भारतीय दर्शन ज्ञान और आचरण के समन्वय का दर्शन है। उसका निर्घोष है—तत्त्व को जानो, सत्य का साक्षात्कार करो, अपने जीवन में उसे ढालो और तदनुरूप क्रियाशील बनो।

१२. भारतीय दर्शन पुरूषार्थवादी व श्रमवादी दर्शन है।

१३. भारतीय दर्शन अन्तर्दर्शन है। वह केवल बाहरी पदार्थों को ही नहीं देखता, जीवन के अन्तरतम की गुत्थियों को भी देखता है और उन्हें सुलझाने का पथ-दर्शन देता है।



दासता

१. दासता बुरी है पर इन्द्रियों की दासता बहुत बुरी है। दूसरों की दासता से मुक्त होना सहज है पर अपनी इन्द्रियों की दासता से मुक्त होना जरा टेढ़ी खीर है।

दिशा

१. दिशा की स्पष्टता पर प्रत्येक चरण गतिमान होता चला जाता है।
२. जीवन की अनिश्चित दिशा ही उसकी अकर्मण्यता का मूल हेतू है।

दीक्षा

१. दीक्षा का अर्थ है—जीवन निर्माण ।

२. दीक्षा का अर्थ केवल साधु वेष पहन लेना मात्र नहीं है। दीक्षा संस्कार का उद्देश्य है—सम्पूर्ण संयमी जीवन ।

३. दीक्षा का मतलब है—भोगों को ठुकरा कर यावज्जीवन के लिए त्यागमय जीवन बिताना, अपने जीवन में सत्य, अहिंसा, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे कठोर व्रतों को पूर्ण रूपेण उतारना ।

४. दीक्षा जीवन का महान् आदर्श है । चिर संचित शुद्ध संस्कारों के बिना इस ओर मनुष्य का मन नहीं जाता ।

५. दीक्षा का आदर्श है—अपने आप में रमण करना ।

६. व्रतों को जीवन में उतारना ही दीक्षा है ।

७. दीक्षा योग्य व्यक्ति को देनी चाहिये । अयोग्य दीक्षा का मैं स्वयं कट्टर विरोधी हूँ । उसके विरोध में मैं क्रांति करने को तैयार हूँ, किन्तु मैं यह मानने को बाध्य नहीं हूँ कि बालक दीक्षा योग्य हो ही नहीं सकता ।

८. दीक्षा उसी बालक को दी जानी चाहिये जिसके संस्कार परिपक्व हों।

९. स्वतंत्रता के युग में बाल दीक्षा पर प्रतिबन्ध लगाना बालकों की स्वतंत्रता पर प्रहार करना है। उनको सर्वथा अयोग्य करार देना है।

दुःख

१. स्वयं को दुःख जितना अप्रिय है उससे कम औरों को नहीं।

२. अपने स्वभाव को भूल कर विभाव में जाना दुःख है।

३. दुःख एक कसौटी है जिसमें मनुष्य परखा जाता है कि वह कंचन है या पीतल, अच्छा है या बुरा।

४. बड़े से भी कोई बड़ा होता है। और छोटे से भी कोई छोटा।

५. संसार में दुःख अधिक है, सुख कम। सुख स्ववशता-आत्मवशता में है, दुःख परवशता में। संसार में पग-पग पर परवशता है फिर सुख की आशा कैसी ?

६. संसार दुःखी है और वह इसलिए दुःखी है कि आज व्यक्ति-व्यक्ति की मानसिक स्थिति असंतुलित बनी हुई है। मनुष्य अपने गुण अवगुण को पहचान नहीं सकता।

दुःख को दूर तो तभी किया जा सकता है जबकि मनुष्य गुण पर गर्व न करे और अवगुणों से पल्ला छुड़ाए।

७. दुःख की जड़ अशान्ति है।

८. ऐहिक सुखों की परिणति दुःखों में है।

९. आज व्यक्ति धन संग्रह में लगा हुआ है। लालसाओं पर उसका नियंत्रण नहीं है। यही दुःख का मूल है।

१०. जहां लालसा है वहां दुःख निश्चित है।

११. ज्यों-ज्यों लोग आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और इच्छाओं को बढ़ाते जायेंगे, सुख और शान्ति दूर भागती जायेगी, दुःख और अशान्ति समीप आती रहेगी।

१२. तुम जीना चाहते हो, मरना नहीं। तुम सुखी बनना चाहते हो, दुःखी नहीं। तो भला औरों को मारना और दुःख देना कहां का न्याय है?

देव-गुरु-धर्म

१. जीवन में अत्यन्त आवश्यक वस्तुएं हैं—देव, गुरु और धर्म। देव उपास्य है जिससे कि तदनुरूप गुणावलि के विकास के पथ पर प्राणी अग्रसर हो सके। गुरु पथ-प्रदर्शक है, वह सही राह दिखाने वाला है। धर्म आत्मा की शुद्धि का साधन है।

२. देव कोई पत्थर की मूर्ति नहीं। जिन्होंने राग, द्वेष को जीता और वीतरागी होकर शाश्वत सुखों को प्राप्त किया, वे है।
३. गुरु वही हो सकता है जिसमें गुरुता हो, जिसमें गुरु के लक्षण हों। बिना सद्लक्षण के गुरु कैसा ?
४ घोर अनैतिकता में फंसे मानव को निकालने के लिए भी ताकतवर, तपस्वी, संयमी गुरु की आवश्यकता है। जो अपने तपोबल के आधार पर, त्याग के बल पर नीति भ्रष्ट मानव को कीचड़ से निकाल सके।



दोष

१. दोष अन्ततः दोष ही है चाहे वह कहीं भी क्यों न हो।
२. दूसरों को दोषी न मान कर स्वयं को दोषी मानना और किसी के प्रति राग, द्वेष नहीं करना; आत्मा के शुद्ध और स्वाभाविक स्वरूप का द्योतक है।
३. अपने दोषों को छिपाना कायरता है।
४. बुरा कार्य स्वयं करके दूसरे को दोष देना उसके प्रति अन्याय है।



धर्म

१. आत्म शुद्धि के साधन का नाम धर्म है।

२. धर्म वह चीज है जो व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन का विकास करता है।

३. धर्म विश्व मैत्री, विश्व बन्धुत्व और विश्व के साथ सम-भाव का प्रतिरूप है।

४. धर्म प्राणी मात्र के लिए हर समय आवश्यक है।

५. धर्म एक सार्वजनिक वस्तु है उसे हर कोई व्यक्ति अपने जीवन में उतारे। इसी में मानव जीवन का सार है।

६. धर्म वह है कि जो यों सिखाये कि किसी को मत सताओ, किसी का शोषण मत करो तथा किसी के साथ अन्याय, अत्याचार और दुर्व्यवहार मत करो। पर सबको अपनी आत्मा के तुल्य समझो।

७. धर्म वह होता है जो आत्म शुद्धि, आत्म शोधन व आत्म परिमार्जन की ओर जन-जन को उन्मुख करे। जिस किसी साधन से आत्म शोधन हो वह निर्विवाद रूप से

धर्म के रूप में सहर्ष अंगीकार है ।

८. सत्य अहिंसामय जो धर्म है वह सबका है ।

९. धर्म विश्व मैत्री की भव्य भित्ति पर टिका हुआ है । वह अपने बन्धुओं, मित्रों और पड़ोसियों के साथ ही प्रेम करना नहीं सिखाता, वह प्राणी मात्र के प्रति विशुद्ध प्रेम करना सिखाता है ।

१०. अपने आपको पहचानने का तरीका धर्म है ।

११. धर्म वह है जिसके स्मरण मात्र से शान्ति मिलती है ।

१२. जीवन में सत्य, शील और दया होनी चाहिये । उनसे आत्मा उज्ज्वल बनती है । यही धर्म है ।

१३. धर्म तो वह विशाल तथा निर्द्वन्द राजमार्ग है जो अपने पर चलने वाले को शान्ति और सुख की स्पृहणीय मंजिल तक पहुंचाता है ।

१४. धर्म हर समय किया जा सकता है इसका प्रतिफल तत्काल नहीं होता, ऐसी बात नहीं है । धर्म का वास्तविक फल तो धर्म करते ही मिल जाता है । धार्मिक क्रिया करने वाले की आत्मा उज्ज्वल बनी । बुरी क्रिया करने वाले की आत्मा बुरी बनी, यही तो वास्तविक फल है ।

१५. धर्म न तो इस लोक को सुधारने के लिए करना चाहिये और न परलोक सुधारने के लिए ही । वह तो केवल कर्मों की निर्जरा के लिए—आत्मा को निर्मल करने के लिए करना चाहिये ।

१६. धर्म का तात्पर्य है—सोचो और जीवन में उतारो ।

१७. मैं ऐसा धर्म नहीं चाहता, जो केवल विचारों तक ही

सीमित रहे। मैं तो ऐसा धर्म चाहता हूँ जो प्रतिदिन के जीवन में उतरे और जिसके द्वारा व्यवहार और विचार के बीच आई हुई खाई को पाटा जा सके।

१८ धर्म की बुनियाद है मैत्री, बन्धुता, जो कि सत्य, शील, सन्तोष, सहिष्णुता आदि सद्गुणों से आगे बढ़ती है।

१९. धर्म वह है जिसके प्रयोग से किसी भी प्राणी को कष्ट न होता हो।

२०. वस्तुतः सच्चा धर्म वही है जो जीवन में उतरा हो।

२१. धर्म वह है जो त्रैकालिक है। आज जो धर्म है वह कल अधर्म बन जाए और आज जो अधर्म है वह कल धर्म बन जाए, मेरे विचारों में वह धर्म नहीं होगा। धर्म, धर्म ही था, धर्म ही है और धर्म ही रहेगा।

२२. युग धर्म वह है, जो जन-जन को प्रेरणा देता रहे, जन-जन को खुराक देता रहे।

२३. धर्म वह वस्तु है जो व्यक्ति के जीवन को विकसित करती है।

२४. जिस प्रकार फसल के लिए पानी और बीज की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धर्माराधना अहिंसा और सत्य पर आधारित है।

२५. धर्म का सत्य स्वरूप बाहरी प्रदर्शन और दिखावे में नहीं है। वह तो जीवन में सत्य, शौच, शील, विनय, सद्भाव और मैत्री जैसे सद्गुणों की संकलना में है।

२६. जिससे आत्मा उज्ज्वल तथा पवित्र बनती है — वह धर्म है।

धर्म के रूप में सहर्ष अंगीकार है।

८. सत्य अहिंसामय जो धर्म है वह सबका है।

९. धर्म विश्व मैत्री की भव्य भित्ति पर टिका हुआ है। वह अपने बन्धुओं, मित्रों और पड़ोसियों के साथ ही प्रेम करना नहीं सिखाता, वह प्राणी मात्र के प्रति विशुद्ध प्रेम करना सिखाता है।

१०. अपने आपको पहचानने का तरीका धर्म है।

११. धर्म वह है जिसके स्मरण मात्र से शान्ति मिलती है।

१२. जीवन में सत्य, शील और दया होनी चाहिये। उनसे आत्मा उज्ज्वल बनती है। यही धर्म है।

१३. धर्म तो वह विशाल तथा निर्द्वन्द राजमार्ग है जो अपने पर चलने वाले को शान्ति और सुख की स्पृहणीय मंजिल तक पहुंचाता है।

१४. धर्म हर समय किया जा सकता है इसका प्रतिफल तत्काल नहीं होता, ऐसी बात नहीं है। धर्म का वास्तविक फल तो धर्म करते ही मिल जाता है। धार्मिक क्रिया करने वाले की आत्मा उज्ज्वल बनी। बुरी क्रिया करने वाले की आत्मा बुरी बनी, यही तो वास्तविक फल है।

१५. धर्म न तो इस लोक को सुधारने के लिए करना चाहिये और न परलोक सुधारने के लिए ही। वह तो केवल कर्मों की निर्जरा के लिए—आत्मा को निर्मल करने के लिए करना चाहिये।

१६. धर्म का तात्पर्य है—सोचो और जीवन में उतारो।

१७. मैं ऐसा धर्म नहीं चाहता, जो केवल विचारों तक ही

सीमित रहे। मैं तो ऐसा धर्म चाहता हूँ जो प्रतिदिन के जीवन में उतरे और जिसके द्वारा व्यवहार और विचार के बीच आई हुई खाई को पाटा जा सके।

१८ धर्म की बुनियाद है मैत्री, बन्धुता, जो कि सत्य, शील, सन्तोष, सहिष्णुता आदि सद्गुणों से आगे बढ़ती है।

१६. धर्म वह है जिसके प्रयोग से किसी भी प्राणी को कष्ट न होता हो।

२०. वस्तुतः सच्चा धर्म वही है जो जीवन में उतरा हो।

२१. धर्म वह है जो त्रैकालिक है। आज जो धर्म है वह कल अधर्म बन जाए और आज जो अधर्म है वह कल धर्म बन जाए, मेरे विचारों में वह धर्म नहीं होगा। धर्म, धर्म ही था, धर्म ही है और धर्म ही रहेगा।

२२. युग धर्म वह है, जो जन-जन को प्रेरणा देता रहे, जन-जन को खुराक देता रहे।

२३. धर्म वह वस्तु है जो व्यक्ति के जीवन को विकसित करती है।

२४. जिस प्रकार फसल के लिए पानी और बीज की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार धर्माराधना अहिंसा और सत्य पर आधारित है।

२५. धर्म का सत्य स्वरूप बाहरी प्रदर्शन और दिखावे में नहीं है। वह तो जीवन में सत्य, शौच, शील, विनय, सद्भाव और मैत्री जैसे सद्गुणों की संकलना में है।

२६. जिससे आत्मा उज्ज्वल तथा पवित्र बनती है — वह धर्म है।

२७. मैं तो उसी धर्म का प्रचार व प्रसार करने में संलग्न हूँ जो त्रस्त, दुःखी व व्याकुल मानव जीवन को आत्मिक सुख, शान्ति व सौजन्य की ओर मोड़ने वाला है, जो नारकीय धरातल पर पड़े जन-जीवन को स्वर्गीय धरातल की ओर ले जाने वाला है।

२८. जिस साधन से आवरणयुक्त आत्म स्वभाव निरावरण बने वह धर्म है।

२९. धर्म चर्चा का विषय नहीं है। वह आचरण का विषय है और उसका आचरण वही मनुष्य कर सकता है जिसका हृदय सरल हो, निष्कपट हो।

३०. जिस प्रकार चित्र का मनुष्य जरा भी हल-चल नहीं कर सकता उसी प्रकार वह धर्म भी पंगु है जो बुराईयो का प्रतिकार नहीं कर सकता।

३१. स्वयं को तथा दूसरों को भी उन्नत, पवित्र और सन्मार्गी बनाना धर्म कार्य है।

३२. जिस धर्म से इस जन्म का सुधार नहीं हो, केवल पुनर्जन्म का हो, वह अधूरा है।

३३. धर्म इस जन्म को उन्नत बनाने में समर्थ है, उससे परलोक कभी नहीं बिगड़ सकता।

३४. धर्म वह है जिसकी साधना में किसी को कोई रोक टोक नहीं हो उसका आधार विश्व बन्धुत्व होता है।

३ . धर्म हृदय परिवर्तन का मार्ग है जो विश्व की समस्याओं के समाधान के लिए नहीं, बल्कि जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने के लिए होता है।

३६. धर्म के ऊंचे सिद्धान्त जब तक जीवन में नहीं उतरते, तब तक केवल उसका नाम रटने से कुछ बनने का नहीं।

३७ शरीर की स्वच्छता के लिए जैसे पानी और साबुन की जरूरत होती है, उसी तरह जीवन की स्वच्छता के लिए (अन्तरतम के परिमार्जन के लिए) धर्म की आवश्यकता है।

३८. धर्म का मूल समता है। वह मानव मानव के बीच में ही नहीं प्राणी मात्र के साथ होनी चाहिये।

३९. धर्म की प्रतिष्ठा धार्मिक प्रवृत्तियों से ही बन सकती है।

४०. धर्म केवल निवृत्ति नहीं है। निवृत्ति के साथ निवृत्ति-मूलक प्रवृत्ति का भी वहां स्थान है। बुराईयों से निवृत्ति है तो भलाइयों में प्रवृत्ति भी।

४१. जीवन को विकारों और बुराईयों से बचा कर भलाई की ओर ले जाना धर्म का अभिप्रेत है।

४२. धर्म आडम्बर में नहीं है वह तो जीवन की साधना में है, आत्मा को मांजने में है।

४३. धर्म साधना में अपने मन को रमा देने वाले अन्तरतम में वह चिनगारी पैदा हो जाती है जो हर दम उसे कुमार्ग से बचने के लिए सजग और उद्‌बुद्ध रखती है।

४४. सबसे अच्छा धर्म वही है जो धर्मानुयायियों के जीवन में अहिंसा और सत्य की व्याप्ति लाए।

४५. धर्म का उद्देश्य जीवन को विकसित करना है अतः वह सब जगह सबके लिए एक है।

४६. धर्म रूढ़ि नहीं किन्तु वास्तविक सत्य है।

४७. धर्म हृदय परिवर्तन की अपेक्षा रखता है, विवशता का नहीं।

४८. जहां सांसारिक संघर्ष से घबड़ा कर भोग, लालसा व निराशा से अभिभूत होकर आत्महत्या करना घोर पाप है। वहां आत्म शुद्धि के लिए अत्यन्त समाधिपूर्वक हंसते-हंसते प्राणों का बलिदान करना महान धर्म है।

४९. धर्म करने का समय केवल पर्युषण ही नहीं, जीवन का प्रत्येक क्षण है।

५०. यदि धर्म का आचरण किया जाये तो वह विश्व को सुखी करने के लिए सर्व शक्तिमान है, और यदि धर्म का आचरण न किया जाय तो वह कुछ भी नहीं कर सकता।

५१. धर्म के नाम पर फैली हुई बुराईयों को मिटाना आवश्यक है न कि धर्म को।

५२. धर्म समाज को व्यक्तिवादी दृष्टिकोण देता है यह कहने वाले उसकी सीमा को दृष्टि से ओझल किये देते हैं।

५३. धर्म ध्वंस की नहीं, निर्माण की दिशा देता है। निर्माण ही तो जीवन की सच्ची शक्ति, स्फूर्ति, सौन्दर्य और सौष्ठव है।

५४. धर्म जुदे-जुदे व्यक्तियों को सुई की तरह मैत्री, सौजन्य और समता के धागे द्वारा जोड़ने का जरिया है।

५५. धर्म व्यक्ति की आध्यात्मिक अपेक्षा या स्वभाव की ओर गति है। वह इतनी सहज है कि उससे सर्वतो भावेन कोई विमुख नहीं हो सकता।

५६. आज धर्म को धर्म स्थान की चीज नहीं, जीवन की चीज बनायें। उसे जीवन के हर क्षण में उतारें। फिर न साम्यवाद का डर रहेगा और न किसी अन्यवाद का ही।

५७. लोगों को चाहिये कि वे धर्म को अपने जीवन की एक आवश्यक वस्तु समझें। वह जीवन सुधार का एक उत्कृष्ट-तम साधन है।

५८. धर्म जीवन की सम्पति है, जीवन की सफलता है और जीवन को संयत बनाने, जीवन स्तर को ऊंचा उठाने का साधन है।

५९. आज के लोग धर्म स्थान में जितना धार्मिक ख्याल रखते हैं वैसा ही ख्याल हर समय रखें तो धर्म उनके आच-रण में आयेगा। उससे उन्हें शान्ति मिलेगी, सुख मिलेगा।

६०. धर्म का सम्बन्ध शरीर रक्षा के साथ न होकर आत्म रक्षा के साथ जुड़ा हुआ है।

६१. दोष धर्म में नहीं; प्रयोग और प्रक्रिया में है।

६२. धर्म मानव को वास्तविक मार्ग बताता है। वह लोगों को ईर्ष्या, द्वेष, कलह, आक्षेप आदि के लिए कभी प्रेरित नहीं करता।

६३. धर्म जीवन के सभी भागों में उपयोगी है। कहीं वह अवरोधक, कहीं उत्तेजक और कहीं वह व्यापक रूप से उपयोग प्रस्तुत करता है। बुरे कर्मों के लिए अवरोधक है, सत्कार्यों में वह उत्तेजक है, विश्वशान्ति के उपयोग प्रस्तुत करता है।

६४. धर्म जीवन में उतारने का तत्त्व है। उसे जितना ही उतारा जाय उतना ही कल्याणकारी है।

६५. धर्म की विजय केवल उद्घोषों से नहीं होती, उसकी विजय होगी नैतिक आचरणों से, सदाचारी बनने से।

६६. जैसे प्रकाश दीपक से पृथक् नहीं हो सकता, उष्णता अग्नि से भिन्न नहीं हो सकती, उसी प्रकार ही धर्म व्यक्ति की आत्मा से अलग नहीं हो सकता पर आश्चर्य की बात तो यह है कि व्यक्ति उसकी प्राप्ति के लिए अन्तर को न झांक कर बहिर्मुखी बनता है।

६७. धर्म पुस्तकों की या केवल सुन लेने की चीज नहीं है बल्कि व्यवहार में अपनाने की चीज है।

६८. व्यक्ति को मिटाया जा सकता है पर किसी के हृदय से धर्म को बलात् नहीं हटाया जा सकता।

६९. आपने यदि धर्म को भूला दिया तो आप अवश्य खतरे में हो जायेंगे।

७०. जीवन में हवा, पानी और खुराक की तरह धर्म की भी आवश्यकता है।

७१. धर्म की वास्तविक आराधना उसके आदर्शों को जीवन में ढालने में है।

७२. धर्म अपनी मर्यादा से दूर हट कर राज्य की सत्ता में घुलमिल कर विष से भी अधिक घातक बन जाता है।

७३. धर्म वहीं कुंठित होता है जहां कि धार्मिक व्यक्ति धर्म की अपेक्षा मतवादों की प्रतिष्ठा का अधिक ख्याल करने लग जाते हैं।

७४. धर्म भी घातक बन जाता है, जब उसमें कामवासना और लालसा का सन्निपात हो जाता है।

७५. जहां तलवार चले, वहां धर्म होना मान लेना, धर्म के वास्तविक अर्थ को नहीं समझने का सूचक है।

७६. सदाचरण धर्म का प्रथम सोपान है।

७७. धर्म की सच्ची आराधना अपने आचरण और व्यवहार को शुद्ध और परिमार्जित बनाने में है।

७८. धर्म का अर्थ है—स्वसन्धान करना।

७९. धर्म का साधन तो त्याग है, तपस्या है, साधना है। धन से धर्म नहीं खरीदा जा सकता।

८०. केवल रूढ़ि धर्म नहीं है। समय बदल रहा है। धर्म का वास्तविक रूप क्या है? इसे पहिचानो।

८१. धर्म का वास्तविक रूप सदाचरण है। जिनको उपेक्षा कर अपने को धर्मोपासक कहने वाला धर्म की और अपने आपकी विडम्बना करता है।

८२. धर्म लड़ाना नहीं सिखाता। वह तो मैत्री, बन्धुता और भाइचारे की सीख देता है।

८३. धर्म को जो संघर्ष, कलह और वैमनस्य का साधन बना लेते हैं वास्तव में धर्म के नाम पर वे अधर्म को पोषण देते हैं।

८४. धर्म की सच्ची उपासना तदनुकूल जीवन बनाने में है।

८५. धर्म न तो खान से निकलता है और न वह बाड़ो में पैदा होता है। वह न गोदाम में रखा जाता है और न मंजूषा में ही, न वह बाजार में मिलता है और न घर में ही।

उसका एकमात्र स्थान शुद्ध पवित्र आत्मा है ।

८६. धर्म तो वह है जिसके आचरण से जीवन पवित्र बने।

८७. बलात्कार में धर्म नहीं है । यदि बलात् में धर्म होता तो सबसे बड़ी धार्मिक पुलिस बनती ।

धर्म–अधर्म

१. त्याग धर्म है, भोग अधर्म । सरलता धर्म है, कुटिलता अधर्म ।

२. जबरदस्ती या आर्थिक प्रलोभन से चोर की चोरी, हिंसक की हिंसा, व्यभिचारी का व्यभिचार दूर करना "धर्म प्रचार" करना न कहा जाकर "अधर्म प्रचार" की कक्षा में आ जाता है और अन्त में वही अशान्ति या युद्ध का कारण बन जाता है ।

३. जहां आशक्ति के फलस्वरूप बलवानों का पोषण और अमैत्री के फलस्वरूप दुर्बलों का शोषण होता है वहां धर्म माना जाये तो फिर अधर्म की क्या परिभाषा होगी और किस प्रकार अधर्म का अस्तित्व जाना जायेगा ?

४. कहने को धर्म और करने को पाप यह धर्म नीति को मान्य नहीं है ।

५. धर्म का उद्गम स्थल प्राणी की आत्मा है । अधर्म का

उत्पत्ति स्थान भी वही है। जिस प्रकार प्रदीप से उज्ज्वल प्रकाश और कृष्ण कज्जल दोनों ही निष्पन्न होते हैं उसी प्रकार ही आत्मा की सत्-असत् प्रवृत्तियों द्वारा धर्म-अधर्म ।

६. मानव शरीर में दानव की आत्मा उतनी खतरनाक नहीं होती जितनी खतरनाक धर्म की पोशाक में अधर्म की पूजा होती है।

धर्म और जाति

१. धर्म की बुनियाद है मैत्री और बन्धुता । उसमें जाति-पांति, वर्ग-वर्ण का भेद नहीं हो सकता ।

२. धर्म का द्वार सबके लिए खुला है। उसमें स्त्री—पुरुष, महाजन—हरिजन, सेठ—नौकर, पूंजीपति—श्रमिक का भेद नहीं हो सकता ।

३. धर्म उसी का है जो उसकी आराधना करे । धर्म की मर्यादा में जाति, रंग, देश, स्पृश्य—अस्पृश्य आदि का कोई भी भेद नहीं हो सकता ।

४. धर्म का आधार जाति, रंग आदि से परे विश्व वन्धुत्व होती है ।

५. धर्म का तत्त्व लिंग, जाति आदि बाह्य सीमाओं से परे

मनुष्य की आन्तरिक शुद्धि पर निर्भर है।

६. धर्म सत्य स्वरूप एक है। सम्प्रदाय, जाति या कौम उसे बांध नहीं सकते।

धर्म और धन

१. पैसों से धर्म होता ही नहीं है। धर्म करना है तो जीवन को त्याग-तपस्या के मार्ग में लगा दीजिये।

२. अर्थ के द्वारा धर्म को नहीं पकड़ा जा सकता। धर्म तो तभी आ सकता है जब हम मानव जीवन के तत्त्वों को अपने व्यवहार में लाएं।

३. धर्म के लिए धन की भी आवश्यकता नहीं होती।

४. धन जहां जड़ है वहां धर्म आत्मा की वस्तु है।

५. वास्तव में धर्म साधना में है। आडम्बर, स्वार्थ-साधना तथा धन में नहीं।

६. धर्म आत्मा की चीज है, आत्मा से होता है। यदि धर्म में धन की आवश्यकता हो तो उसे फिर धनवान ही कर सकेंगे, गरीबों के लिए उसमें स्थान नहीं रहेगा। धर्म में धन की कोई आवश्यकता नहीं।

धर्म और धर्मस्थान

१. धर्म नाश की आशंका को उत्पन्न होने का अवकाश इसलिए मिलता है कि उसे आप जीवन से बाहर कहीं ढूंढते हैं अथवा आपने सोच रखा है कि धर्म मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर और क्रिया-कांडों में ही है अतः उनके मिटते ही धर्म मिट जायेगा।

२. धर्म मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों, धर्मस्थानों में नहीं है। वह तो प्रत्येक व्यक्ति की अन्तरात्मा में सन्निहित है।

३. धर्म सिर्फ तीर्थ, मन्दिर और सन्तों के इर्द-गिर्द ही रहने वाली वस्तु नहीं, वह आत्मीय तत्त्व है हर कहीं हो सकता है। मन्दिर में जाने, सन्तों के दर्शन कर लेने और गंगा में गोता लगाने मात्र से ही धर्म नहीं हुआ करता। ये सब तो सिर्फ उपासना के बाह्य और थोथे रूप हो सकते हैं।

४. हमें धर्म का सिंहनाद करना है पर उस धर्म का नहीं, जिसका अस्तित्त्व केवल धर्मस्थानों और मन्दिरों तक ही सीमित है।

५. धर्मस्थानों में आकर दर्शन और अध्यात्म की बड़ी-बड़ी गुत्थियों को सुलझाए और दुकान पर बैठ कर असहाय व्यक्तियों के गलों पर छुरी चलाए। वह कैसा धार्मिक ?

६. पूजा आदि परम्पराओं को पालना मात्र धर्म नहीं है। धर्म का अर्थ है नैतिक आचरण।

७. केवल मन्दिरों में जाने मात्र से, साधुओं के दर्शन मात्र से, तीर्थ स्थानों में चक्कर लगाने मात्र से क्या बनेगा, यदि धर्म के मूल आदर्शों को जीवन में प्रश्रय न दिया जाय।

८. मैं यह नहीं चाहता कि मनुष्य धर्मस्थान में आकर तो धार्मिक बन जाये और व्यवहार के समय उसे बिलकुल ही भुलादे।

९. ऐसे धर्मस्थानों में मेरा विश्वास नहीं, जहां बाहर तो धर्मस्थान का साइनबोर्ड लगा हो और भीतर खून खराबी होती रहती हो। धर्मस्थान उसी समय तक नन्दनवन है जब तक उस स्थान पर धार्मिक क्रिया चलती हो, अन्यथा हम उसे नन्दनवन नहीं कह सकते।

धर्म और राजनीति

१. धर्म नीति का प्रभाव राजनीति पर अवश्य रहे, किन्तु वह उसमें घुले मिले नहीं। जब धर्म नीति अपनी इस मर्यादा को लांघ कर राजनीति में घुल मिल जाती है,

तब उसका दुरुपयोग होने लगता है। फलतः धर्म नीति और राजनीति दोनों ही घातक एवं खतरनाक बन जाती है।

२. धर्म और राजनीति एक नहीं है। जहां इन दोनों को एक कर दिया जाता है वहां धर्म, धर्म न रह कर स्वार्थ-सिद्धि का एक जरिया बन जाता है। यह अवश्य है कि राजनीति अपने विशुद्धिकरण के लिए धर्म से प्रेरणा लेती रहे। फिर राजनीति में अन्याय, शोषण, ज्यादती, बेईमानी और धोखेबाजी जैसे दानवीय दुर्गुण नहीं रहेंगे। वही राजनीति संसार को शान्ति की ओर बढ़ाने वाली होगी।

३. धर्म अन्याय को नहीं सह सकता, वैसे ही राजनीति भी। पर इन दोनों में अन्तर यही हैं कि धर्म अन्याय को हृदय की शुद्धि से निवृत्त करता है और राजनीति में सभी सम्भव उपायों का प्रयोग करना उचित माना गया है। अतः धर्म और राजनीति दो पृथक् वस्तुएं हैं।

४. यदि बलपूर्वक प्रवृत्ति से भी धर्म हो जाय, तो फिर राजनीति ही धर्म नीति हो जायेगी।

५. संयम आत्म साधना के आध्यात्मिक मार्ग में जितना आवश्यक और कल्याणकारी है, उतना समाजनीति और राजनीति में भी है।

६. धर्म राजनीति के नियंत्रण में कभी नहीं रह सकता।

धर्म और समाज

१. धर्म यद्यपि आत्म-शुद्धि के लिए है, फिर भी काफी दूर तक उससे समाज का कल्याण होता है। इसलिए वह उससे सर्वथा असम्बन्ध नहीं रहता।



धर्म—कर्त्तव्य

१. जो धर्म है, वह कर्त्तव्य है और जो कर्त्तव्य है, वह धर्म है भी और नहीं भी।
२. कर्त्तव्य धर्म है यह भी हम कह सकते हैं, पर वह कर्त्तव्य आत्म-विकास का साधन होना चाहिये।
३. जो कर्त्तव्य प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक जाति के भौतिक स्वार्थों से सम्बन्धित है और प्रत्येक परिस्थिति में परिवर्तन शील है, वह धर्म नहीं।
४. धर्म और समाज का सामंजस्य होना अत्यन्त अपेक्षित है।

धर्म की अवहेलना

१. सचमुच में यह सही तथ्य है कि धर्म की अधूरी समझ और अयोग्य धर्माधिकारों ने संसार में धर्म को बदनाम किया।

२. धर्म की अवहेलना होने का कारण भी यही है कि धर्म को जैसा चाहा वैसा बना लिया गया।

३. धर्म की अवहेलना जो हुई वह अधिकांश धर्मगुरुओं के द्वारा ही हुई है। धर्म बतलाया बहुत ऊंचा, मगर उसको आचार में नहीं लाया गया।

४. जिस धर्म की शृंखला के पीछे सत्य व अहिंसा नहीं, वह धर्म—धर्म नहीं ढोंग है। धर्म के नाम पर धोखा व पाखण्ड है।

५. धर्म के विषय में आज लोगों की सबसे बड़ी जो भूल हो रही है वह यह है कि धर्म को अपना उपकारी समझ कर उसे कोई बधाई दे या न दे परन्तु दुत्कार उसे सबसे पहले दी जाती है।

६. धर्म के नाम पर होने वाली पूंजी के खर्च व आडम्बर—ये ही धर्म के प्रति अश्रद्धा का सही कारण बन रहे हैं।

७. भौतिक सुख आत्मा का स्वभाव नहीं है, इसलिए वह न तो धर्म है और न धर्म का साध्य ही। इसलिए उसकी सिद्धि के लिए धर्म करना उद्देश्य के प्रतिकूल हो जाता है।

८. सत्य सिद्धान्तों एवं विचारों के प्रचार के लिए भी जो कलह, युद्ध या प्राण नाशकारी शास्त्रादिक का प्रयोग करता है वह निश्चय ही धर्म को उच्चस्थान से गिराने वाला और संसार शान्ति को भंग और विनाश करने वाला होता है।

९. मेरी दृष्टि में वह धर्म ही नहीं है जो अगले जन्म को सुधारने के लिए इस जीवन को संक्लिष्ट बनाये, बिगाड़े। वस्तुत: धर्म की कसौटी अगला जीवन नहीं यही जीवन है।

१०. धर्म का आधार अहिंसा और सत्य है। जहां इनका व्याघात है वहां धर्म कैसा ?

११. धर्म आत्म वृत्तियों को सुधारने में है। केवल वाह्य परम्पराएं और स्वार्थ पोषण में नहीं।

१२. जहां आसक्ति है, अमैत्री है वहां धर्म नहीं।

१३. जहां तलवार चले, वहां धर्म होना मान लेना; धर्म के वास्तविक अर्थ को नहीं समझने का सूचक है।

१४. निर्बल की रक्षा के लिए सबल को मार देना धर्म नहीं है।

१५. जहां कोई मनुष्य अधार्मिक को भी विवश करके धार्मिक

बनाने की चेष्टा करता है वह धर्म नहीं।

१६. धर्म तो मनुष्य को मिलना सिखाता है, मनुष्य को आपस में लड़ाये वह धर्म नहीं।

धर्म–पाप

१. वह कार्य जो साधु के लिए पाप होता है श्रावक के लिए धर्म नहीं हो सकता।

२. साधु और गृहस्थ का धर्म अलग-अलग नहीं हो सकता। वह एक है। साधु उसे पूर्णरूपेण अपनाते हैं तो गृहस्थ उसे आंशिक—यथाशक्ति जीवन में उतारते हैं।

धार्मिक

१. धर्मनिष्ठ व्यक्तियों को यह चिंता करने की अपेक्षा नहीं कि उनकी संख्या कितनी है। उनके लिए सबसे अधिक चिन्ता करने और सोचने का विषय यह है कि वे अपने जीवन को टटोलते रहें कि उनका आचरण उच्च बन रहा है या नहीं। वे कहीं अधःपतन की ओर तो नहीं जा रहे हैं।

२. धर्म जीवन में रहे। जीवन के प्रत्येक कार्य में धर्म की पुट रहे, यह आज के मानव के लिए आवश्यक है।
३. धार्मिक किसी को मिटाने की नहीं सोचता उसका लक्ष्य होता है दुरुपयोग का अन्त करना।
४. फूटे घड़े में पानी कभी नहीं टिक सकता। उसी प्रकार धर्म के लिए भी पात्रता की आवश्यकता है।
५. आय-व्यय के आंकड़े मिलाना जागरूक व्यापारी के लिए जितना आवश्यक है उतना ही धार्मिक के लिए जीवन के गुण, दोषों का पर्यालोचन करना।

धैर्य

१. प्रारंभिक स्थिति को धैर्य से पार करने पर आगे का पथ सरलता से पार किया जा सकता है।
२. धीर और कर्मठ वे हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों को रौंद कर न्याय के मार्ग पर अग्रसर होते हैं।
३. कार्य के स्थायित्व के लिये चिन्तन अपेक्षित है और चिन्तन के लिए धैर्य।

नयवाद

१. प्रत्येक वस्तु के अनन्त धर्म है। उनको जानने के लिए अनन्त दृष्टियां हैं। प्रत्येक दृष्टि में सत्यांश है। सब धर्मों का वर्गीकृत रूप अखण्ड वस्तु है और सत्यांशों का वर्गीकरण अखण्ड सत्य होता है।

२. कोई वस्तु या कोई शब्द सही है या गलत — इसकी परख करने के लिए एक दृष्टि की अनेक धाराएं चाहिये।

३. अखण्ड वस्तु जानी जा सकती है, किन्तु एक शब्द के द्वारा एक समय में कही नहीं जा सकती। मनुष्य जो कुछ कहता है उसमें वस्तु के किसी एक पहलू का निरूपण होता है। वस्तु के जितने पहलू हैं, उतने ही सत्य हैं।

४. जितने सत्य हैं उतने ही द्रष्टा के विचार हैं। जितने विचार हैं उतनी ही आकांक्षाएं हैं, जितनी आकांक्षाएं हैं उतने ही कहने के तरीके हैं, जितने कहने के तरीके हैं, उतने ही मतवाद हैं, मतवाद एक केन्द्र विन्दु हैं।

५. एक से अनेक के सम्बन्ध जुड़ते हैं। सत्य असत्य के प्रश्न

खड़े होने लगते है, यहीं से विचारों का स्रोत दो धाराओं में बह चलता है। अनेकान्त या सत्एकान्त दृष्टि—'अहिंसा', असत्य, एकान्तदृष्टि— हिंसा'।

नये—पुराने

१. अति पुराणपंथी गतिहीन और जड़ होते हैं। वहां अति उदार पंथी उतावले होकर काम को बिगाड़ देते हैं।

२. नये और पुराने की भेद रेखा अनुभव ही तो है। केवल ज्ञान नहीं अनुभव भी चाहिए।

३. एक मार्ग पर चलने का दुराग्रह रूढ़िवाद है। एक पथ चलते चलते अगर दूसरा पथ आकर मिल जाय और वह सुगम व सफल पथ हो तो उसे अवश्य ही अपना लेना चाहिए।

नरक-स्वर्ग

१. जहां कलह, ईर्ष्या, द्वेष, बेईमानी, अभिमान और परिग्रह है, वहीं नर्क है और जहां भ्रातृभाव, स्नेह और आपसी प्रेम है वहीं स्वर्ग है।

नागरिक

१. राष्ट्र की सबसे बड़ी सम्पत्ति वहां के सत्यनिष्ठ और संयमशील नागरिक होते हैं।

२. नागरिक वह होता है जो नागरिकता के कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व को पालता है। उसमें विवेक, चिन्तन, कर्त्तव्य-निष्ठता एवं मैत्री—भावना का होना अत्यन्त आवश्यक है।

३. चरित्र नागरिकता की कसौटी है, उसके अभाव में सच्चे नागरिकता की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

४. आज नागरिकों के सामने बड़ी समस्या अर्थ की है। आज का नागरिक अर्थवाद की दुर्दम बेड़ियों में बुरी तरह जकड़ा हुआ है। परन्तु अर्थ अनर्थ का मूल है।

५. सच्चा नागरिक वही है जो अपने पर नियंत्रण और अंकुश रखता है।

६. नागरिक जहां सामाजिक-दृष्टि से अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागरूक रहता है, धार्मिक-दृष्टि से भी उसके

कर्त्तव्य हैं जिनका अनुवर्तन करना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक है ।

७. अणुव्रतों का स्तर उस सीमा को छूने वाला है कि जिससे बाहर रहने वाला व्यक्ति सही अर्थ में मानव और नागरिक नहीं कहला सकता ।

८. नागरिकता की कसौटी प्रामाणिकता, सच्चाई और ईमानदारी है, बाहरी आडम्बर और दिखावा नहीं ।

९. नागरिक वह है जिसमें सत्य, शोच, श्रद्धा, शील और समता जैसे नागरिक जनोचित सद्‌गुण हों ।

नारी

१. कोमलता, करुणा, विनयशीलता और अनुशासनप्रियता नारी जाति के सहज गुण हैं ।

२. नारी जाति स्वभावतः धर्मपरायण एवं श्रद्धानिष्ठ होती है ।

३. जागृत नारी जहां अपने जीवन का विकास करती है वहां समूचे परिवार पर उसकी सात्त्विकता की छाप पड़ती है । उसके आदर्श जीवन का ज्योति पिंड चारों ओर अपने प्रकाश की किरणें बिखेरता है ।

४. सहिष्णुता, अनुशासनप्रियता, लज्जाशीलता और बुराईयों के प्रति घृणा—भारतीय नारी के सहज गुण हैं ।

नास्तिकता

१. सत्य के प्रति अविश्वासी और निष्ठाहीन बनना ही तो नास्तिकता है।

नियन्त्रण

१. नियन्त्रण दो प्रकार के होते हैं — बाह्य नियंत्रण और आत्म नियंत्रण, बाह्य नियंत्रण दुःखमय होता है। उसमें नियंत्रण होने पर भी आत्म-शान्ति का अनुभव नहीं होता लेकिन आत्म-नियन्त्रण करने के बाद में शान्ति मिलती है। यही सुख का साधन है। धर्म भी इसीमें है। आत्मोज्ज्वलता भी इसीमें है।
२. नियंत्रण तीन तरह से होता है—मन-संयम, वचन-संयम और इन्द्रिय-संयम।

३. जहां आत्मनियंत्रण और आत्मसंयमन नहीं, मैं वहां मृत्यु देखता हूँ।

४. संयत और आत्मनियंता जिस आत्म-तुष्टि का अनुभव करता है, वह असंयत के लिए कहां सुलभ हो सकती है?

५. आत्म-संयम में जो आनन्द मिलता है वह नियंत्रण में नहीं।

६. आत्म-संयम का अर्थ है—अपने द्वारा अपने लिए अपना नियंत्रण।

७. जीभ पर नियंत्रण किये बिना दमन का पाठ अधूरा रहता है।

८. इच्छानियंत्रण की वेदी पर सब संघर्ष अपने आप स्वाहा हो जाते हैं।

९. अपनी सुख सुविधा को सर्वोपरि मान कर चलने वाला अपने पर नियंत्रण रख नहीं सकता।

१०. यदि सही अर्थ में सुख और शान्ति की आकांक्षा है तो व्यक्ति-व्यक्ति आत्म संयम का अभ्यास करे। आवश्यकताओं को कम करे।

११. व्यक्ति अपनी सहज मर्यादा से बाहर जाता है तब बाहरी नियंत्रण उसे आ दबाता है।

१२. जिसने अपने आप पर नियंत्रण किया और आपको वश में किया, सचमुच उसने जीवन-शुद्धि के मार्ग में गतिशील कदम रखा है।

१३. शैशव की चञ्चलता और यौवन के जोश में गति पर नियंत्रण अति आवश्यक है।

१४. लाखों रुपये देना इतना कठिन नहीं है जितना आत्म-वृत्तियों पर नियंत्रण करना है ।

निर्माण

१. ध्वंस सहज है, निर्माण कठिन है ।

२. नव-निर्माण के लिए शान्ति, समन्वय और सहृदयता की अपेक्षा है, आपसी विरोध की नहीं ।

३. अपने को अनैतिक वृत्ति और दुर्व्यसनों में डालकर मानव जीवन को नष्ट न करें । वे किसी तोड़-फोड़ मूलक हिंसात्मक कार्य में भाग न लें । आज विध्वंस की नहीं, निर्माण की आवश्यकता है ।

४. जहां जीवन और आत्मा का निर्माण होता है, वही निर्माण श्रेयस्कर है ।

निष्ठा

१. निष्ठा में "करो या मरो" के सिवाय दूसरा विकल्प नहीं होता ।

२. लक्ष्य की सिद्धि के लिए जिसमें मृत्यु का वरण करने

की उमंग हो, वह जीता है और उसकी निष्ठा जीती है।

३. निष्ठा ही एक ऐसी वस्तु है, जिसका अन्त नहीं होता।

४. निष्ठा को पाना सहज बात नहीं; पर जिसमें निष्ठा होती है, वह कुछ कर गुजरता है।

५. निष्ठा आचरण से हो सकती है, दुहाई मात्र से नहीं।

नैतिकता

१. नैतिकता एक ऐसा तत्त्व है जो किसी कानून के द्वारा नहीं; शिक्षा के द्वारा, हृदय परिवर्तन के द्वारा पनप सकती है।

२. नैतिक-समस्या एक मुख्य समस्या है। जब तक लोगों का नैतिक उत्थान नहीं होगा तब तक उनका विकास अधूरा रहेगा।

३. भारत में अनेक दुष्काल पड़े। अनेक विध कठिनाइयां आईं। पर वे सब इतने दुःखद नहीं हुए जितना दुःखद आज का नैतिक दुर्भिक्ष है।

४. भारत में नैतिकता आज भी मरी नहीं है, वह मूर्च्छित है। यदि उसे चैतन्य संजीवनी बूंटी मिले तो मैं समझता हूं उसका उज्ज्वल अतीत वर्तमान में झलक सकता है।

५. आध्यात्मिक भित्ति सुदृढ़ बने विना नैतिकता भी नहीं पनप पाती।

६. नैतिक व्यक्तियों का संगठन जितना बलवान होगा, उतना ही समाज, देश और राष्ट्र का नैतिक स्तर उन्नत और सांस्कृतिक बनेगा।

७. हमें यह नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों में कितने नेता इकठ्ठे होते हैं। हमें यह भी नहीं सोचना है कि हमारे कार्यक्रमों की क्या २ प्रशंसाएं होती हैं। परन्तु हमें सोचना यह है कि हमारे कार्यक्रमों से लोगों को क्या मिलता है और हम नैतिक-उत्थान में कितने सहायक बन सकते हैं?



परतंत्र

१. जिसे अपने स्वार्थ और तज्जन्य गुट में ही ईश्वर दर्शन होता है, विश्व शान्ति और भलाई दीख पड़ती है, वह परतन्त्र है।

२. मानसिक परतन्त्रता बाहरी नियन्त्रण से आती है और उसके आने का हेतू है अपना असंयम।



पर्दा

१. तत्त्व चिन्तन की दृष्टि से पर्दा चक्षु-दर्शन का पालिमन्थु (अवरोधक) ठहरता है।
२. पर्दा ज्ञान एवं विवेक के विकास में स्पष्ट रूप से बाधक है।
३. पर्दा कायरता का प्रतीक व जीवन विकास में बाधक है।
४. शील की रक्षा के लिए आत्म-बल के विकास की अपेक्षा है, पर्दे की नहीं।
५. पर्दा आवश्यक नहीं बल्कि अनुशासित जीवन आवश्यक है।

परिग्रह

१. आरम्भ और परिग्रह—ये व्यक्ति को धर्म से दूर किये रहते हैं।

२. परिग्रह से विरक्त होकर अपरिग्रह में आने के कार्य से जीवन का पग-पग पर सम्बन्ध है। आज जीवन-शास्त्र करीब-करीब अर्थशास्त्र बन गया है किन्तु अर्थ परिग्रह के त्याग से ही व्यक्ति पारमार्थिक बन सकता है।

३. वृत्तियों की अप्रमाणिकता का हेतु महा परिग्रह है।

४. अशान्ति की जड़ परिग्रह विस्तार या अधिकार विस्तार की भावना है।

५. पूंजी का वैयक्तिक केन्द्रीकरण बन्धन और परिग्रह है, उसी तरह राष्ट्रगत केन्द्रीकरण भी उससे परे नहीं। दूसरे राष्ट्रों के लिए वह ईर्ष्या का विषय बन जाता है। अतः इन सबसे परे होने के लिए मैं बहुधा कहा करता हूँ कि साम्यवाद इन सब समस्याओं का स्थायी हल नहीं, वरन वह सामयिक पूर्ति है। स्थायी हल तो तभी निकल सकेगा जब पूंजी के प्रति प्रतिष्ठा भाव न रहेगा वरन त्याग और संयम के प्रति प्रतिष्ठा भाव रहेगा।

परिवर्तन

१. परिवर्तन करना कठिन होता है, परन्तु उसके होने पर लोग बहुत सारी कठिनाइयों से सहज ही बच जाते हैं।

२. मानव जीवन परिवर्तन शील है। जैसे बचपन के बाद यौवन और यौवन के बाद बुढ़ापा आता है उसी प्रकार

सामाजिक, राजनैतिक और राष्ट्रीय जीवन में भी परिवर्तन होना अनिवार्य है।

३. विचारों का परिवर्तन ही क्रियात्मक परिवर्तन बनता है।
४. वर्तमान सामाजिक मूल्यों में मौलिक परिवर्तन अपेक्षित है।
५. दुनिया में परिवर्तन होता रहता है। हर चीज परिवर्तनशील है। अवस्थाओं का बदलते रहना ही परिवर्तन है।
६. परिवर्तनशीलता बुरी नहीं है। बिना परिवर्तन के जीवन निर्माण नहीं।
७. परिवर्तन की मूल भित्ति व्यक्ति का परिवर्तन है।
८. दृष्टिकोण का परिवर्तन ही वास्तविक परिवर्तन है और वह है भोग से त्याग की ओर, विलास से सादगी की ओर।

परिस्थिति

१. परिस्थितियों का श्रृष्टा स्वयं मनुष्य होता है।
२. परिस्थितियों के आगे घुटने टेकना मानव की घोर पराजय है।
३. परिस्थिति के बदल जाने से जीवन बदल जाये, यह एकान्ततः सम्भव नहीं है।
४. संहार की स्थिति पैदा करने वाला कोई भी अच्छा नहीं है। भले फिर वह असाम्यवादी हो या साम्यवादी।

पवित्रता-अपवित्रता

१. मुंह की आवाज हृदय की आवाज हो तब वह दूसरों के हृदय तक पहुंच सकती है ।

२. सर्वोपरि लक्ष जो जीवन की पवित्रता है उसे प्रमुखता देना है, इसके बिना और कार्य सफल नहीं हो सकते ।

३. व्रत जीवन की पवित्रता है ।

४. पवित्रता बाहर से नहीं आती, अपवित्रता बाहर से आती है ।

५. आवश्यकताओं की असीमा जीवन में घोर अपवित्रता लाती है । इसे जो नहीं सोच सकते वे विश्वास मान कर चलें और जो सोच सकते हैं वे अनुभव की कसौटी पर कस कर देखें ।



पशुता

१. जब पशुता का उदय होता है तब व्यक्ति का विवेक दब जाता है और उसमें भलाई को पकड़ने का सामर्थ्य नहीं रहता ।

२. पाशविक शक्ति का विकास हुआ । फलतः महायुद्ध हुए । अशान्ति बढ़ी, कठिनाइयां बढ़ी ।

३. अनीति और अन्याय पर आधारित जीवन पाशविक जीवन से भी गया गुजरा है ।

४. जीवन की अनिवार्य आवश्यकता के विना ही हिंसा करना नृशंसता है, पशुता है ।

पुरुषार्थ

१. पुरुषार्थ का सहारा लेकर मनुष्य कठिन से कठिन कार्य को भी सरल बना सकता है ।

२. अपने पुरुषार्थ के द्वारा मनुष्य जो आत्म-भिन्न तत्त्व का आत्मा के साथ सम्पर्क कर बैठा है उनको मिटाकर परम विजय प्राप्त कर सकता है।

३ महापुरुषों की कार्य-सिद्धि उनके पुरुषार्थ में ही रहती है—वे बाहरी उपकरणों (सामग्रियों) की अपेक्षा नहीं रखते।



पूंजीवाद—साम्यवाद

१. संसार की दो परस्पर विरोधी विचारधाराएं जो आस्तिक और नास्तिक, पूंजीवाद और साम्यवाद के नाम से चल रही हैं, उन दोनों में संगम हो, समन्वय हो तो मानव सुख की सांस ले सकता है।

२. पूंजीवाद और साम्यवाद के समन्वय का मार्ग है—अहिंसा और अपरिग्रह की भावना का प्रसार।



प्रकृति

१. प्रकृति में जो सहज सौन्दर्य होता है वह विकृति में नहीं।

२. प्रकृति से उपलब्ध सामग्री के उपयोग में मुझे जो आनन्द मिलता है वह कृत्रिमता में नहीं।

३. विकृति से वापस प्रकृति में आने में जोर पड़ता है।

४. मनुष्य को प्रकृति में ही रमण करना चाहिये, चाहे कष्ट ही क्यों न उठाना पड़े।

५. विकृति के आवरण को हटाने से प्रकृति स्वयं रह जायेगी, मिट्टी को दूर करने से स्वर्ण मूल रूप में आ जाएगा।



प्रतियोगिता

१. उत्तेजना तो वहां होती है जहां प्रतियोगिता होती है।



प्रतिश्रोत

१. जिसे कुछ करना है, कार्यशील बनना है उसे प्रतिश्रोत में चलना होगा।

२. अनुश्रोत का मार्ग यद्यपि सरल है और प्रतिश्रोत का दुःसाध्य; फिर भी अनुश्रोत में चलने वाला सागर में विलीन हो जाता है और प्रतिश्रोत में चलने वाला अपने अभीष्ट स्थान को प्राप्त कर लेता है।



प्रमाद

१. असावधानी प्रमाद है, प्रमाद हिंसा है।
२. प्रमाद भय है, दोष है और वर्जनीय है। प्रमाद चरित्र को नीचे गिराता है और आत्मा का भयानक शत्रु है। अतः मानव अप्रमाद का सहारा लेकर प्रमाद को जीते। जिससे उसमें निर्भयता आयेगी और उसका आत्म-बल जाग उठेगा।
३. मद्यपान से प्रमाद आता है। प्रमाद सबसे बड़ा पाप है।
४. प्रमादी सर्वदा सभय है और अप्रमादी निर्भय।



प्रशंसा

१. प्रशंसा कांटों का ताज है। जिस व्यक्ति के सिर पर यह ताज रखा जाता है, उसे बड़ा सोच समझ कर चलना पड़ता है।

प्रेम

१. प्रेम के बिना विवाद का कभी अन्त नहीं होता।

२. प्रतिशोध की भावना पैदा किए बिना किसी को पराजित करने का कोई उपाय है तो वह प्रेम है।

प्रेरणा

१. मैं उस साधक, साधना और प्रगति को अधिक महत्त्व-शील मानता हूँ जो केवल अकेला ही उत्थान पथ पर न बढ़ता हुआ औरों को भी उस विकास और प्रगति की राह पर बढ़ते रहने की प्रेरणा दे।

२. अपने को हीन समझना आत्मशक्ति को कुंठित करना है। वास्तव में उनमें वह अदम्य उत्साह और अपरिमित

शक्ति है, जो विकास के पथ पर आगे बढ़ने में उन्हें बड़ी प्रेरणा दे सकती है।

३. चलते सब हैं पर उनका चलना चलना है जो दूसरों के लिए पगडंडी बन जाए। बोलते सब हैं पर उनका बोलना बोलना है जिससे दूसरे प्रेरणा पाये।

४. जिस मार्ग में जो स्वयं स्पष्ट होता है, वह उसकी प्रेरणा देने का अधिकारी है।



बलात्कार

१. बलात्कार से शरीर पकड़ा जायेगा, पर आत्मा नहीं। तुम्हारा डंडा किसी तन को रोक सकता है पर मन को नहीं। तुम्हारा पैसा किसी को खरीद सकता है पर अधिकृत नहीं कर सकता। बलात्कार, डंडा और पैसा किसी को हरा सकता है पर दूसरों को जीत नहीं सकता।

२. सत्य सिद्धान्तों एवं विचारों के प्रचार के लिए जो भी कलह, युद्ध या प्राण नाशकारी शस्त्रादि का प्रयोग करता है, वह निश्चय ही धर्म को उसके उच्च स्थान से गिराने वाला और संसार की शांति को भंग और विनाश करने वाला होता है।

३. जबरदस्ती या आर्थिक प्रलोभन से चोर की चोरी, हिंसक

हिंसा, व्यभिचारी का व्यभिचार दूर करना "धर्म प्रचार नहीं किन्तु अधर्म प्रचार" की कक्षा में आता है और अन्त में वही अशान्ति या युद्ध का कारण बन जाता है।

४. जिन वादों, शासन सत्ताओं व धर्मों का अस्तित्व और प्रचार प्रतिशोध, हिंसा तथा पशुबल के आधार पर होता है वे संसार में चिरस्थायी एवं वास्तविक शान्ति की स्थापना नहीं कर सकते ।

५. धार्मिक स्वतन्त्रता का अपहरण करना या धर्माधिकारों पर कुठाराघात करना मनुष्य के जन्म सिद्धि अधिकारों पर आघात करना है ।



ब्रह्मचर्य

१. ब्रह्मचर्य साधना का मुख्य अंग है । वह ओज और आत्म तेज का प्रतिबिम्व है । इसके अभाव में जीवन वास्तव में एक भार है ।

२. ब्रह्मचर्य-साधना के लिए यह आवश्यक है कि साधक रस भोगी न बने ।

३. ब्रह्म में लीन रहने से जीवन में ओज और तेज रहता है।

४. ब्रह्मचर्य एक वहुत वड़ी शक्ति है । ब्रह्मचर्य का मतलब है सव इन्द्रियों को जीत कर आत्म रमण करना ।

५. व्यक्ति ब्रह्मचारी न बन सके फिर भी उसे व्यभिचारी तो क़तई नहीं बनना चाहिये ।
६. ब्रह्मचर्य अहिंसा का स्वात्म रमणात्मक पक्ष है ।
७. जिस किसी ने अपना दृष्टि-संयम, मानसिक-सन्तुलन और खाद्य-संयम खो दिया, आंशिक रूप में वह ब्रह्मचर्य से स्खलित हो चुका ।
८. जिस प्रकार मकान में दरार पड़ जाने पर यदि उसकी मरम्मत का खयाल नहीं किया जाता है तो वह गिर जाता है । इसी प्रकार यदि कोई अपने मन, वचन और काया पर अंकुश नहीं रख सकता तो वह ब्रह्मचर्य की साधना में सफल नहीं हो सकता ।
९. भीरुता ब्रह्मचर्य पालन में बाधक है ।
१०. ब्रह्मचर्य और इन्द्रिय-निग्रह से खाद्य संयम पृथक् नहीं है ।
११. ब्रह्मचर्य साधु की अपेक्षा दम्पत्ति ब्रह्मचारी को धन्यवाद है जो अनुकूल व उपलब्ध सुविधा को त्याग कर आगे आते हैं ।

बालक

१. बालक दिखने में छोटे-छोटे लगते हैं पर उनमें बहुत बड़ी शक्ति निहित है । आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें सही पथ-प्रदर्शन मिले ।

२. छोटा बालक सबको प्रिय होता है। क्योंकि वह कृत्रिमता से परे होता है। उसमें असत्य, विश्वासघात, विषमता, घृणा आदि विपरीत भाव नहीं होते।

३. जहां बड़े होने पर जीवन में विकृतियां और विकार भर जाने की सम्भावना रहती हैं, वहां बाल-जीवन किसी भी प्रकार की कालिमा लिए नहीं होता।

४. बचपन संस्कार जमने का सबसे अधिक उपयुक्त समय है। बचपन में जमे संस्कार जीवन भर के लिए अमिट होते हैं।

५. बाल-जीवन में जितने अच्छे संस्कार बनते हैं, उतने अवस्था पकने पर नहीं बनते।

६. जन्मतः बच्चा न उद्दण्ड होता है, न उच्छृङ्खल। जैसे संस्कार उसे मिलते हैं, जैसे वातावरण में वह पलता है अभिभावकों और अध्यापकों का जैसा स्वभाव होता है, बालक के जीवन में उसी प्रकार के संस्कार ढलने लगते है।

७. बाल-मानस कोरा कागज, कच्ची हांडी, सफेद कपड़ा व उगता हुआ पौधा है। वह इच्छानुसार लिखा जा सकता है, घड़ी जा सकती है, रंगा जा सकता है और मोड़ा जा सकता है।

८. बालक स्वभावतः बुरे नहीं होते। सच्चाई और भोलापन उनके सहज गुण हैं। पर वे दूषित वातावरण, प्रतिकूल परिस्थिति या बुरा संसर्ग पाकर बुरे बन जाते हैं।

बुराई

१. बुराई की सीख देने वाले स्वयं उसके परिणामों से बच नहीं सकते ।

२. लोग बुराई को शीघ्र ग्रहण करते हैं किन्तु भलाई को नहीं । इसके दो कारण हो सकते हैं :— (१) दुर्बलता और (२) परिस्थिति ।

३. बुराई भी एक साथ नहीं आ जाती । उसका भी अभ्यास क्रम होता है पहले भय लगता है, दूसरी बार संकोच, तीसरी बार निःसंकोचता आ जाती है और चौथी बार साहस बढ़ जाता है, फिर तो पाप का अभ्यास हो जाता है ।

४. कितना अच्छा हो, प्रत्येक बुराई के अवसर पर मनुष्य अपनी दिशा को उदाहरण बनाते ।

५. बुराइयों की ओर बिना रुके लुढ़कने की यह वह फिसलन है जो व्यक्ति को अवनति के रसातल तक ले जाये बिना नहीं छोड़ती ।

६. बुराइयों को मिटाने के लिए संस्कार परिवर्तन या हृदय परिवर्तन का प्रयास हो तो वह बुराई जड़ मूल से मिट सकती है ।

७. बुरा काम वही है जिसे करने पर या करते समय छिपाने की आवश्यकता पड़े ।

८. यदि मानव जीवन का आज सूक्ष्मता से पर्यवेक्षण किया जाये तो यह स्पष्ट प्रतीत होगा कि वह बुराइयों की लाइब्रेरी बन गया है ।

९. आज मानव बुराइयों के कारण खोखला हो रहा है, वह पनप नहीं रहा है । अच्छाइयों से उसने आंखे मूंद रखी है । यह स्थिति भयानक है ।

१०. मानव बुरा नहीं होता, बुरे होते हैं उनमें आये हुए अवगुण, उसमें घर बना कर रहने वाली बुराईयां ।



भक्त और भक्ति का पात्र

१. सही भक्त वही होता है जो मानव जीवन में आचार और विचार को अपना कर चलता है ।

२. सच्चा भक्त गुरु के उपदेशों पर भरोसा करता है ।

३. मनुष्य भक्ति का पात्र तभी बन सकता है जबकि वह क्षमा, कोमलता और कष्ट सहिष्णुता को अपनाता है ।

४. असहिष्णु, कठोर हृदयी और अविनयी कभी भी भक्ति का अधिकारी नहीं बन सकता ।

५. भक्ति का लक्ष्य जीवन शुद्धि, आत्म उल्लास और बंधन मुक्ति है ।

६. वीतराग प्रभु का ध्यान करो और अपने को उन्हीं में अर्पित कर दो; यही सच्ची भक्ति है ।



भय

१. जो लोग अपनी अधिकृत जनता को, दूसरों को भयभीत करने की प्रेरणा देते हैं, वे अपने लिए भय का वातावरण तैयार कर रहे हैं ।

२. जो आज दूसरों को भयभीत कर सकता है, वह कल जिसे अपना मानता हैं उसे भी भयभीत कर सकता है ।

३. दुर्बलता जीवन के लिए अभिशाप है । दूसरों को डराना हिंसा है, उसी प्रकार डरना भी हिंसा है । डर डरनेवालों को ही डराता हैं ।

४. भयाकुल मनुष्य उन्मुक्त आकाश में सो नहीं सकता ।

५. जो प्रमादी है, उसको सब तरह का भय होता है ।

६. जो अप्रमत (अप्रमादी) है, उसे भय नहीं होता ।

७. भय वहां होता है, जहां श्रद्धा का उत्कर्ष नहीं होता ।

८. छिपना वहां है, जहां भय है, आशंका है ।
९. भय वहां है, जहां यथार्थ के प्रतिकूल आचरण हैं।
१०. भय पापी को है, धर्मी को नहीं ।
११. डरना कमजोरी और डराना क्रूरता है ।
१२. डर वहां होता है जहां भूठ पलती है

भाग्य-निर्माता

१. हमारे भाग्य को बनाने वाले और बिगाड़ने वाले हम स्वयं ही है ।
२. मनुष्य अपने भाग्य का खुद निर्माता है ।
३. मनुष्य अपने भाग्य का कर्त्ता-धर्ता हैं ।
४. मानव सुख और दुःख का स्वयं निर्माता है उसकी अच्छी और बुरी प्रवृत्तियां ही उसके लिए अच्छा और बुरा होने का कारण है ।

भारतीय अध्यात्म विज्ञान

१. भारतीय अध्यात्म विज्ञान के ऊंचेपन का अनुमान आप इसी से लगा सकते हैं कि जहां भौतिक विज्ञान के विकास की परिसमाप्ति होती है, अध्यात्म विज्ञान वहां से शुरू होता है ।

२. भारतीय तत्त्व ज्ञान खास कर अन्तर्जगत को छूता है । उसकी दृष्टि में सच्चा विज्ञान अहिंसा और समता है । ये ही वे साधन हैं जो जीवन में शान्ति का श्रोत बहाते हैं ।



भारतीय चिंतन

१. भारतीय चिंतन के अनुसार जीवन की परम्परा एकमात्र वर्तमान जैसी न होकर भूत व भविष्य से जुड़ी हुई है ।

२. भारतीय चिंतन में जीवन का जो महत्त्व है, मरण का भी उससे कम नहीं, यदि वह संयमपूर्वक हो, क्योंकि संयममरण आत्म-साधना की संतृप्तता का परिपालक है।

३. भारत के पास सबसे बड़ी पूंजी है, वह नीति और चरित्र की है। सिक्के की पूंजी यहां जीवन का साधन मात्र रही है, साध्य नहीं। साध्य रहा है सन्तोष और शान्ति।



भाषा

१. भाषा भावों का दौत्य या प्रतिनिधित्व करती है, वह भावों को दूसरे तक पहुंचाने का जरिया है।



भोग

१. शोषण और संग्रह भोग-विलास की पूर्ति के लिए हैं।

२. भोग वृत्ति में जब तक न्यूनता नहीं आती तब तक न शोषण मिटता है न संग्रह।

३. भोग में सुख नहीं विषाद है।

४. जिन भोगोपभोगों की भूल-भूलैया में गुमराह बन जो व्यक्ति अपने को भूल जाता है वह जीवन को भूल जाता है। वह भोग सामग्री मृग मरीचिका से अधिक क्या है ?

५. सामग्री के अभाव में जो कराहता रहे, वही उसे पाकर विलासी बन जाये यह उचित नहीं।

६. वास्तव में भोग में सुख नहीं, सुख की भ्रान्ति है।

७. व्रत के दर्शन में रोग का मूल भोग-वृत्ति है, पदार्थ और संग्रह नहीं।

भौतिकता

१. मानव अपने आपको भूलता जा रहा है। वह आत्मीय तत्त्वों को छोड़ विजातीय तत्त्वों में रमण करने लगता है। वह अध्यात्मवाद को छोड़ भौतिकवाद के चंगुल में फंसता जा रहा है। फलतः वह अपने आपको भूला, मानवता को भूला और उसने दुःखों के दल-दल को निमन्त्रण दिया।

२. आज पदलोलुपता का रोग धर्म को न अपनाने और भौतिकवाद को जीवन में स्थान देने का दुष्परिणाम है।

३. भौतिकता में अन्तरंग सफाई नहीं, केवल बाहरी दिखावा है। अध्यात्म अन्तर की सफाई में विश्वास रखता है।

४. अध्यात्म-शून्य भौतिकवाद ने ही अणुबम व उद्जन बम जैसे प्रलयकारी अस्त्र उपस्थित किये हैं, वह मनुष्य का त्राण कभी नहीं कर सकता।

भौतिक विज्ञान

१. भौतिक-विज्ञान साधनों के ढेर जमा कर सकता है पर वह मानव-मन में सन्तोष व संयम नहीं जगा सकता। संयम व सन्तोष के विना मनुष्य सुख व शान्ति प्राप्त नहीं कर सकता।

२. भौतिक विज्ञान पृथ्वी-लोक व चन्द्र-लोक की दूरी को चाहे तय कर सकता हो, वह एक राष्ट्र व दूसरे राष्ट्र के बीच, एक समाज व दूसरे समाज के बीच, एक पड़ोसी व दूसरे पड़ोसी के बीच जो मनो दूरी है, विचारों की दूरी है उसे तय नहीं कर सकता।

३. भौतिक विज्ञान के प्रयोग का एक परिणाम यह निकला है कि वह जनता के लिए अभिशाप बन गया है, पद-पद पर मानव-विनाश करने के लिए तैयार हो गया है और उससे विश्व-व्यापी जो अशान्ति बढ़ी है वह भी मनुष्य के जीवन के लिए एक समस्या बन गई है।

मन भेद

१. छोटे-छोटे मत भेदों के लिए मन भेदों की दीवारें खड़ी करना महान भूल है ।

२. मत-भेदों की खाई से मन-भेदों की दरारें अधिक घातक है ।

३. विश्व मैत्री का आदर्श लेकर चलने वाले यदि छोटी-छोटी बातों को लेकर परस्पर मन मुटाव रखें, वैमनस्य फैलायें और अनैतिकता को प्रश्रय दें, यह सर्वथा हेय है ।

मर्यादा

१. जहां मर्यादा होती है वहां संघ तो स्वयं बन ही जाता है पर संघ का स्थिरत्व उसी अवस्था में रह सकता है जबकि मर्यादाएं सुव्यवस्थित हों ।

२. केवल मर्यादाएं ही कोई त्राण नहीं हैं। उनके पीछे भावना रहनी जरूरी है।
३. मर्यादा में संगठन होता है।
४. वही जीवन महत्त्वपूर्ण और आकर्षक है जो मर्यादित होता है।
५. मर्यादा में रहने वाला सलिल जहां स्वयं आकर्षक होता है वहां वह शस्य सम्पत्ति को भी निष्पन्न करता है।
६. मर्यादित जीवन से ही समाज, राष्ट्र और आप सबका भला है।
७. जिस संगठन में आचार होता है, उसकी मर्यादा दृढ़ होती है।
८. सदस्य की निष्ठा ही मर्यादा को मूल्यवान बनाती है।
९. मर्यादा की एकरूपता के लिए उसका वाचन और समीक्षा आवश्यक होती है।



महत्त्व

१. विकास की दृष्टि से व्यक्ति का महत्त्व हो सकता है पर पूजा की दृष्टि से मैं व्यक्तिवाद को महत्व नहीं देता।



महान (महापुरुष)

१. बड़ा वह है जो त्यागी और संयमी है ।

२. बड़प्पन का मापदण्ड सम्यक् आचरण और सत्य का अनुष्ठान है ।

३. आचरण-पतित कोई भी बड़ा आदमी नहीं हो सकता ।

४. बड़प्पन का जो सम्बन्ध किसी जाति, वर्ग, वर्ण, कुल, आदि से माना जाता है वह काल्पनिक और अस्वाभाविक है ।

५. वास्तव में बड़ा वह है जिसने आत्म-शुद्धि के मार्ग पर आगे बढ़ते हुए अपने आपको संयम से जोड़ दिया है ।

६. दुःख आने पर पर्वत की तरह अडोल रहने वाले महापुरुष कहलाते हैं और उनके नाम इतिहास में स्वर्ण पृष्ठों पर गौरव के साथ लिखे जाते हैं ।

७. महापुरुष पथ नहीं चलाते । वे अपने स्वाभाविक गति के अनुसार चलते हैं तब उनके द्वारा स्वयं पथ निर्मित हो जाता है ।

८. सांप आदि जहरी जीवों के रहने से छोटे वर्तन का पानी खराब हो सकता है पर बड़े-बड़े तालावों का पानी जहरीला नहीं हो जाता जबकि उनमें कितने ही जहरीले जीव-जन्तु रहते हैं।

९. जो मनुष्य अभिमान को मिटा कर जीवन में नम्रता को स्थान दे, वह महान है, ऊंचा है।

१०. विकार के साधन रहने पर भी जो मनुष्य विकारग्रस्त नहीं होते वे महान हैं।

११. व्यक्ति अपने जीवन को जितना अधिक संयम से संजोयेगा, वह उतना ही ऊंचा और बड़ा होगा।

१२. महापुरुष किसी एक समाज, जाति और वर्ग के नहीं होते, वे सबके हैं और इसीलिए सभी लोगों द्वारा स्तुत्य एवं वन्दनीय हैं।

१३. मनुष्य बड़ा बनेगा अपने सच्चरित्र से, अपने पवित्र कार्यों से और नैतिक तत्त्वों को जीवन के प्रत्यक्ष व्यवहार में परिणत करने से।

१४. बड़ा आदमी वह है जो अपने व्यापार में अप्रमाणिकता नहीं करता और दूसरे के अधिकारों पर अनुचित अधिकार नहीं करता हो।

१५. महापुरुषों के जीवन का प्रत्येक क्षण शिक्षाप्रद व प्रेरणादायक होता है।

१६. महापुरुष वे हैं जो अपना अपकार करने वालों पर भी क्रोध नहीं करते।

मान

१. मान करने से मान नहीं रहता। मान रहता है—मान त्याग से।

मानव और मानव-जीवन

१. मानव पहले मानव है पीछे मजदूर और मालिक।
२. पहले मनुष्य मनुष्य बने फिर बाद में धार्मिक।
३. मानव का यह सहज स्वभाव है कि वह बंधा हुआ, परतन्त्र और परमुखापेक्षी नहीं रहना चाहता।
४. आज सबसे बड़ी आवश्यकता लोगों को सर्वप्रथम मानव बनने की है जिसके बिना कोई भी योजना सफल नहीं हो सकती।

५. मानव ने अपने हाथों अपनी मानवता खोई है, क्या वह अपनी चिर-विस्मृत आत्मकथा को याद करेगा ?

६. मनुष्य देवता बनना चाहे, इसके पहले वह मानव तो बने।

७. सच्चे मानव का अर्थ है — मानवीय गुणों को धारण करने वाला सत्कर्मनिष्ठ व्यक्ति ।

८. सुगन्धी के बिना फूल कैसा ? वैसे ही मानवोचित गुणों के बिना मानव कैसा ?

९. जिस प्रकार एक दीप से लाखों दीपक ज्योति पा सकते हैं उसी प्रकार एक व्यक्ति से लाखों में आत्म-जागृति का संचार हो सकता है ।

१०. सत्य और अहिंसा से नफरत करने वाला मानव कभी मानव नहीं बन सकता ।

११. व्यक्ति अपने जीवन की महत्ता को समझे और अपने में ऐसी सद्वृत्तियां पैदा करें जिससे उनका भावी जीवन उन्नत और विकासशील बन सके ।

१२. यदि व्यक्ति यह एक ही बात ग्रहण कर ले कि दूसरों के लिए बुरा कार्य नहीं करूंगा तो वह सही रूप में मानव बन सकता है ।

१३. मानव जन्म पाना और बात है, मानव बनना और।

१४. मानव जीवन क्षणिक है, यही कारण है कि वह बहुत कीमती है ।

१५. मानव जीवन सभी योनियों में एक ऐसी श्रेष्ठ योनि है जिसकी प्राप्ति के बाद मनुष्य अगर चाहे तो बहुत बड़ा लाभ उठा सकता है ।

१६. मानव जीवन की प्राप्ति का उद्देश्य बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करना है। अर्थात् दुःखों से छुटकारा पाना और शाश्वत सुख की उपलब्धि करना है।

१७. मानव जीवन बहुमूल्य है। इसको यदि व्यर्थ गंवा दिया गया तो फिर इसका दुबारा मिलना कठिन है।

१८. आज मनुष्य का जीवन विशृंखलता के कारण विषम बनता जा रहा है। जब तक विशृंखलता चलेगी तब तक समता व शान्ति कैसे आयेगी।

१९. मानव जीवन की सार्थकता इसमें नहीं है कि आप ज्यादा से ज्यादा विलासी बनें, पूंजीपति बनें, ऐश आराम से जिन्दगी को बितायें।

२०. धार्मिक जीवन मानव जीवन की सबसे पहली अपेक्षा है।

२१. मानव जीवन हीरे के तुल्य कीमती है इसे यों ही नहीं गंवा देना चाहिये। त्याग, तपस्या व्यक्ति से न भी हो सके तो कम से कम सुबह दो घड़ी मन को शुद्ध कर, ईर्ष्या और मत्सर को तज कर परमात्मा का भजन ही करे।

२२. जीवन एक प्रवाह है। नदी का प्रवाह जिस प्रकार बहता जाता है यह जीवन भी बहता रहता है। जहां बांध आता है, प्रवाह रुकता है। इसी तरह यह मनुष्य जीवन, जीवन का एक रूका प्रवाह हैं।

२३. मनुष्य का जीवन ज्ञान-विज्ञान की एक बहुत बड़ी प्रयोग शाला है। इसमें इतने प्रयोग हुए हैं जिनका शतांश भी नहीं पकड़ा जा सकता।

२४. मनुष्य जन्म मिला, विकास की सम्पूर्ण सामग्रियां मिली। ऐसा होते हुए भी यदि व्यक्ति जीवन का सही उपयोग नहीं करता तो वह उसकी अज्ञता है।

२५. जीवन का मूल्य धन-संग्रह नहीं, वह अमूल्य है।

२६. मनुष्य दूसरों के विषय में गलत धारणा रख सकता है, किन्तु अपने विषय में नहीं।

२७. मानव को शत्रु समझना बुद्धिहीनता है।

२८. संसार भर की आश्चर्य से आश्चर्यजनक व दुर्लभ से दुर्लभ वस्तुओं में जितना आश्चर्यजनक व दुर्लभ मानव जीवन है उतनी और कोई चीज नहीं। वह आश्चर्यजनक तो इसलिए है कि संसार के आश्चर्यों का केन्द्र व जनक वही है।

२९. मानव-जीवन बहुत कीमती है। इसमें यदि व्यक्ति साहस, जागरूकता और आत्म-उत्साह से काम करे तो ऐसे काम कर गुजरता है जो उसके अपने लिए तो उन्नति के हेतु हैं ही, औरों के लिए भी वे उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ने में मशाल का काम देते हैं।

३०. लोग कहते हैं देश का पतन हो गया, समाज का पतन हो गया, पर मुझे लगता है कि आज व्यक्ति की आत्मा का पतन हो रहा है।

३१. मनुष्य चाहे कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, मृत्यु के आगे किसी का बल नहीं चलता।

३२. क्या वह जीवन कोई वास्तविक जीवन है, जहां व्यक्ति अर्थ कीट बन उससे चिपटा रहे और एक अवधि विशेष

के बाद अपनी मानव योनि की परिसमाप्ति कर यहां से चलता बने ।

३३. सपनों की दुनियां में जाकर भी जो सपने का नहीं बनता वही वास्तविक व्यक्ति है ।

३४. मानव जीवन का ध्येय संयम की साधना है न कि विलास ।

३५. जब तक मानव अपने आपको नहीं परखेगा, तब तक उसकी कोई भी प्रगति सम्पूर्ण और स्थायी नहीं हो सकती ।

३६. व्यक्ति स्वयं जब अपने दोषों को देखना शुरू कर देता है तो उन्हें त्यागने में जल्दी समर्थ होता है ।

३७. मनुष्य अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से जो करता है वह सत्यं शिवं सुन्दरं होता है ।

मानवता

१. युद्धों और संघर्षों के दावानल से दग्ध मानवता आज कराह रही है ।

२. मानवता संयम और सदाचार में है । मानवता त्याग और प्रत्याख्यान में है । मानवता सत्य और अहिंसा में है । मानवता ब्रह्मचर्य और अचौर्य में है । मानवता अपरिग्रह में है । मानवता सन्तोष और क्षमा में है । मानवता

सबको आत्म तुल्य समझने में है। वह सद्‌गुणों को संजोए मानव के अन्तःस्थल में रहती है।

३. बल प्रयोग के साथ किसी पर विचारों को लादना मानवता की हत्या है।

४. मानवता बाहर के आडम्बरों में नहीं, वह अन्तर की वस्तु है।

५. आज देश ने सबसे ज्यादा खोया है तो ईमान और मानवता को खोया है।

६. जब तक जीवन में सात्विक आचरण, ईमानदारी, सद्‌वृत्ति, मैत्री-भाव जैसे सद्‌गुण नहीं आते तब तक वह उपचार मात्र जीवन है वास्तविक नहीं।

७. नैतिकता और मानवता का आधार हृदय-शुद्धि है।

८. ज्योति के बिना जैसे दीपक का महत्त्व नहीं, प्राणों के बिना जिस प्रकार शरीर का मूल्य नहीं, उसी तरह धर्म के बिना मानव केवल कहने भर को मानव रहता है, सच्ची मानवता के दर्शन उसमें नहीं होते।

९. मानवता के लिए चरित्र का उत्थान आवश्यक है।

१०. यदि मानव की मानवता नहीं बनी तो उसके पास फिर सुरक्षित रह ही क्या गया ?

११. व्यक्ति से घृणा करना मानवता का अपमान है।

मूर्ख

१. मानव मानव का शत्रु नहीं होता। मानव को परास्त कर अपने को विजयी मानने वाला मूर्ख है।

२. गलती होना इतनी बड़ी बात नहीं, पर उसको स्वीकार न करना या उस पर आत्म ग्लानी न करना मूर्खता है।

मूल्यांकन

१. किसी का मूल्यांकन नवीनता और प्राचीनता से नहीं हो सकता। अच्छाई की कसौटी एक मात्र गुण है।

मैत्री

१. जो व्यक्ति दूसरों के "स्व" का अपहरण नहीं करता वह सबका मित्र है।

२. जो बात मैत्री, प्रेम, सद्भावना से बन सकती है वह रक्तपात और हिंसा से नहीं बन सकती। प्रतिशोध की भावना पैदा किये बिना किसी को पराजित करने का कोई उपाय है तो वह मैत्री है।

३. मैत्री के बिना विवाद का कभी अन्त नहीं होता। मीठी बोली टूटे दिल को मिला देती है। अभय भाव शत्रुओं को भी मित्र बना देता है।

४. मैत्री के क्षेत्र में छोटे बड़े का भेद समाप्त हो जाता है।

५. संवत्सरी पर्व हमें यही संदेश देता है कि हम आत्म-चिंतन करें और आपस के मन-मुटाव को भूल जाएं तथा मैत्री और भ्रातृत्व बढ़ाएं।

६. मैत्री जीवन के परिष्कार का पहला और जीवन की ऊंचाई का चरम सोपान है।

७. जो व्यक्ति समाज या संस्थान मैत्री का प्रसार करते हैं, शत्रु भाव की परिसमाप्ति कर अपनी मित्रता से दूसरे के हृदय को आप्लावित करते रहते हैं, वे सचमुच ही महान साध्य की साधना में संलग्न हैं।

८. मैत्री जीवन की शान्ति का सर्वोच्च वरदान है। उसकी उत्पत्ति अभय में और विकास में होती है।

९. आज मनुष्य के पास प्रलय की प्रचुर सामग्री है। इसके निरोध का एक मात्र विकल्प अब मैत्री ही है।

१०. अहिंसा, अभय और विश्वास मैत्री के बिना टिक नहीं सकते।

११ मैत्री अहिंसा में है।

१२. मैत्री दो व्यक्तियों से सम्बन्धित होती है। अहिंसा दो के बिना भी हो सकती है।

१३. विश्व बन्धुत्व की भावना को फैलाने के लिए जरूरी है कि हम किसी पर व्यक्तिगत आपेक्षात्मक नीति को अख्तियार नहीं करें। हमारी नीति मण्डनात्मक रहनी चाहिये।

१४. सत्य में सदाचार का अखण्ड स्वरूप समाया हुआ है, उसका कोई भी अंग सत्य की सीमा से बाहर नहीं है। सत्य कोई छोटी-मोटी पगडण्डी नहीं, वह राजपथ है। जिस पर आत्म-विश्वास के साथ अग्रसर हुआ जा सकता है।

१५. डण्डे के बल पर और प्रलोभन द्वारा किसी स्थायी सुधार की बात नहीं की जा सकती। उपदेश द्वारा हृदय परिवर्तन करके ही किसी को सन्मार्ग पर लाया जा

सकता है ।

१६. परस्पर सहयोग से प्रेम की भावना का विस्तार होता है तथा वह धर्म नहीं होते हुए भी व्यक्ति को धर्म के लिए सक्षम बनाने में सहायक होता है ।

१७. वह दिन अभ्युदय का होगा, जिस दिन युद्ध का प्रतिशोध मैत्री से लिया जायेगा ।

१८. मित्र से कोई भय नहीं होता इसलिये अभय की भूमिका भी मैत्री है ।

१९. मैत्री प्रेम से ऊंची है, क्योंकि वह मात्र सगे-सम्बन्धियों के दायरे से बाहर भी की जा सकती है ।

२०. मैत्री की सच्ची प्रक्रिया किसी गिरते हुए को उठाना है।

२१. मैत्री का आदर्श है, केवल मित्रों ओर प्रेमियों के साथ ही नहीं, शत्रुओं के साथ भी मित्र भाव बरता जाय।

२२. मैत्री एक विराट और व्यापक तत्त्व है । अपने में इसे पनपाने के लिए मानव को चाहिए कि वह दूसरों से प्रेम पाकर फूले नहीं, विरोध पाकर सूखे नहीं ।

२३. मैत्री की पृष्ठभूमि अभय है ।

२४. मैत्री और प्रेम में अन्तर है। प्रेम में एक तरफ आकर्षण और झुकाव होता है जो समता को नहीं बने रहने देता।

२५ मैत्री की मूल भित्ति सहिष्णुता है ।

मोक्ष

१. सारे कर्म बन्ध टूट कर आत्मा का सत् स्वरूप निखर आना, उसका पूर्ण विशुद्ध हो जाना मुक्ति है।

२. मुक्ति प्राप्त करने में वेश-भूषा बाधक नहीं। वेश चाहे साधु का हो या गृहस्थ का। वास्तविकता तो यह है कि अन्तरात्मा में साधुत्व आना चाहिये।

३ आत्मा के सत्य साक्षात्कार का ही नाम तो बन्धनों से छुटकारा है।

४. रथ का एक पहिया रथ नहीं है। रथ की एक धुरी रथ नहीं है, रथ का एक घोड़ा रथ नहीं है। इन सबका समवेत ही रथ हैं। उसी प्रकार सम्यग्-ज्ञान धुरी हैं, सम्यग्-दृष्टि पहिया है और सम्यक्-चारित्र घोड़ा है। यदि सम्यग्-ज्ञान, दर्शन और चारित्र को एक साथ लेकर साधना मार्ग पर उतरें तो अवश्य ही सिद्धि मिलेगी।

५. आत्म-मुक्ति की प्रक्रिया के दो तत्त्व हैं — संवर और निर्जरा। संवर निवृत्ति है और निर्जरा निवृत्ति संवलित प्रवृत्ति, संवर निरोध है और निर्जरा शोधन।

मौन

१. मौन में जो आनन्द है वह बोलने में कैसे हो सकता है?
२. मौन का आनन्द बोलने के आनन्द से ऊंचा है।

युद्ध

१. युद्ध तलवारों, बन्दूकों, मशीनगनों और अणुबमों में नहीं है, वह मानव के दिल और दिमाग में है। मानव जब चाहता है तभी लड़ाई का भूत खड़ा होता है।
२. युद्ध की पागल मनोवृत्ति मनुष्य को जन्मान्ध बनाये रखती है।

युवक–वृद्ध

१. युवकों में अदम्य उत्साह है, साहस है और काम करने की क्षमता है पर इन सब की सार्थकता तभी है जबकि वे सही माने में जीवन का उद्देश्य समझते हुए चरित्र-विकास और आत्म-निर्माण के पुनीत लक्ष्य में इनका प्रयोग करें।

२. युवकपन केवल अवस्था सापेक्ष नहीं है। वह उत्साह, लगन और साहस सापेक्ष है।

३. युवक बुजुर्गों के अनुभव से लाभ उठा कर ही आगे बढ़ सकते हैं।

४. युवकों और बुद्ढों का सहयोग अंधे और पंगू का सा है।

५. अगर युवक वृद्धों के अनुभवों का लाभ उठाकर वृद्धों और युवकों के बीच की खाई को पाट कर आगे बढेंगे तो संगठन के कार्य में सफलता मिलना पूर्णतः संभव है।

योगी

१. जो अपनी वृत्ति को आन्तरिक विशुद्धि से जोड़ ले वही तो योगी है।



योजना की सफलता

१. योजनाओं की सफलता के लिए पहले उसकी रूपरेखा पर स्वयं चलें और बाद में दूसरों का पथ-प्रदर्शन करें।



राग

१. व्यक्ति परक विजय की कामना राग है।



राष्ट्र और अणुव्रत

१. अणुव्रत-आन्दोलन की मूल भित्ति व्यक्ति है। व्यक्ति का पड़ोस पर, पड़ोस का समाज पर, समाज का राष्ट्र पर और राष्ट्र का संसार पर असर पड़े बिना नहीं रहता।

२. नदी का उद्‌गम-स्त्रोत बहुत छोटा होता है पर आगे चल कर वह बहुत बड़ा रूप ले लेता है। इसी तरह व्यक्ति-व्यक्ति से शुरू किये जाने वाले 'अणुव्रत आन्दोलन' का रूप पहले छोटा दिखाई देता है परन्तु वह समाज, देश और राष्ट्र-सबकी आत्मा को छू सकने की क्षमता रखता है।

३. अणुव्रत चरित्र व नैतिक-निर्माण की योजना है जिसकी आज राष्ट्र को बहुत बड़ी आवश्यकता है।



राष्ट्र और धर्म

१. धर्म राष्ट्र की आत्मा का निर्माता है ।

२. राष्ट्र की आत्मा तब ही स्वस्थ, मजबूत और प्रसन्न रह सकती है जबकि उसमें धर्म के तत्त्व घुल मिल गये हों ।

३. राष्ट्र निर्माण में धर्म जहां तक सहायक हो सकता है और इसके लिए धर्म जिन सूत्रों का प्रतिपादन करता है वे हैं — आत्म-स्वतन्त्रता, आत्म-विजय, अदीन-भाव, आत्म-विकास, और आत्म-नियन्त्रण । इन सूत्रों का जितना विकास होगा उतना ही राष्ट्र स्वस्थ, उन्नत और विकसित बनेगा ।

४. धर्म का क्षेत्र व्यक्ति-सुधार का क्षेत्र है । व्यक्तियों का समूह समाज और समाज की एकता राष्ट्र है । अतः इस दृष्टि से वह समाज-सुधार और राष्ट्र-सुधार का भी साधन बन सकता है ।



राष्ट्र निर्माण

१. जिस राष्ट्र में सब व्यक्ति नेता बन बैठते हैं, सबके सब अपने आपको पंडित मानते हैं और सब बड़े बनना चाहते हैं वह राष्ट्र जरूर दुःखी रहेगा।

२. जब तक सत्यनिष्ठा और प्रामाणिकता जीवन का मूल मंत्र नहीं बन जाती तब तक मानवता का सूत्र पहचाना जाय यह कभी भी सम्भव नहीं और राष्ट्र का निर्माण हो जाय यह कभी नहीं हो सकता।

३. राष्ट्र की आत्मा वहां की जनता है। जब तक जनता का जीवन शुद्ध नहीं, प्रामाणिक नहीं, सत्योन्मुख नहीं तब तक सच्चा राष्ट्र-निर्माण नहीं।

४. जिस देश, राष्ट्र और संघ में जितने अधिक सत्यवादी होते हैं, वह उतना ही अधिक प्रतिष्ठित और उन्नत बनता है।



लक्ष्य

१. व्यक्ति तब बनता है जब उसका कोई निश्चित लक्ष्य हो, उसकी पूर्ति की तड़फ हो और उसका आग्रह हो।

२. रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार और परम्पराओं में संयम हो, सरलता हो यह एक लक्ष्य है।

३. हमारा आदर्श और लक्ष्य यह है कि विरोधियों को भी अहिंसा के माध्यम से जीतें। न किसी से उद्विग्न हों और न किसी को उद्विग्न करें।

४. काम के पीछे नाम अपने आप होता है मगर केवल नाम हानिप्रद है। नाम की भूख न रखते हुए काम में जुटे रहना ही परम उद्देश्य है।

लज्जा

१. लज्जा का अर्थ है—असत् कार्यों से, बुरी प्रवृत्तियों से भय रखना, जिससे व्यक्ति अपने आपको उनसे बचा सके।
२. बुरे आचार और बुरे व्यवहार के प्रति जो संकोच होता है उसे लज्जा कहते हैं।
३. बंधन हृदय का होता है, लज्जा आंख की होती है; इन आवरणों की नहीं।



वक्रोक्ति

१. वक्र हृदय से निकली वक्रोक्ति दूसरों का हृदय-आकर्षित नहीं कर सकती।



विकार

१. विकार-भावना विद्या साधक में बाधक है।

२. विकार व्यक्ति को व्यामोह में डालता है और उसके मौलिक आनन्द को दबाये रखता है।

३. प्रकृति को छोड़ कर विकृति में जाना दुःख हेतु (अधर्म) है।

४. बाहरी पदार्थ ममकार पैदा करते हैं और ममकार विकार पैदा करता है।

५. चक्षु द्वारा रूप का साक्षात् करना बुरा नहीं, बुरा तो उसके देखने में जो विकार है वह है।

६. ज्यों-ज्यों आन्तरिक वृत्तियों का विकार बढ़ता है त्यों-त्यों स्थितियां जटिल बनती हैं।

७. मानव जितना विकृति में उलझा, विभाव में गया, सचमुच उसने कुछ पाया नहीं, पर खोया है।

८. बिल्ली के दांत वे ही हैं जिसमें वह अपने बच्चों को भी पकड़ती है और चूहे को भी। पर बच्चे को पकड़ते समय

उसकी यह दृष्टि रहती है कि कहीं खरोच न आये और चूहे को पकड़ने पर यह दृष्टि रहती है कि कहीं छूट न जाये। यह आंख का अन्तर नहीं, मानसिक-विकार का अन्तर है।



विकास

१. अनावश्यक प्राचीनता को समेटते हुए आवश्यक नवीनता को पचाते जाना विकास का मार्ग है।

२. मानव जीवन विकास की पहली सीढ़ी है।

३. जीवन-विकास को दबाने वाला पदार्थ-विकास हमें नहीं चाहिये।

४. मैं राष्ट्र का वास्तविक विकास बड़ी-बड़ी बांधों, पुलों और सड़कों में नहीं देखता, उसका सच्चा विकास उसमें रहने वाले मानवों की चरित्र-शीलता, सदाचरण, सच्चाई और ईमानदारी में मानता हूँ।

५. अध्यात्मिक विकास ही मानव का सच्चा विकास है।

६. समूचे संसार को सुधारने की डींग भरने वाले मनुष्य, समूचे संसार को देखने वाले मनुष्य जब तक अपने को नहीं सुधारेंगे, अपने जीवन की ओर नहीं देखेंगे, जीवन में दुष्प्रवृत्तियों का विरोध नहीं करेंगे, तब तक विकास

की सब कल्पनायें मानव-मस्तिष्क की थोथी कल्पनायें ही होंगी।

७. मानवता का विकास ही सांस्कृतिक-विकास है।

८. जीवन का सर्वतोमुखी विकास केवल सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों की उपलब्धियों तक ही सीमित नहीं है।

९. जीवन-विकास-क्रम के मुख्य तीन सूत्र हैं — श्रवण, श्रद्धा और पराक्रम।

१०. अपनी दुष्प्रवृत्तियों का विरोध कर सद्प्रवृत्तियों का समावेश करना ही जीवन विकास की सर्वोच्च साधना है।

११. दुःख सुख को ही जीवन का ह्रास और विकास मत समझो किन्तु संयम जीवन का विकास और असंयम ह्रास है।

१२. विकास के पहले लक्ष्य की स्थिरता होनी चाहिए।

विचार-प्रचार

१. विचारों को फैलाने का एक मात्र तरीका हृदय में अपनी विचारधारा को जचाना है।

विचार फैलाने के लिए लड़ाई को प्रश्रय देना भयंकर भूल है।

विजेता

१. सच्चा विजेता और सच्चा सैनिक वही होता है जो अपनी आत्मा पर विजय पाता है और अपनी आत्म-प्रवृत्तियों से जूझता है ।



विज्ञान

१. यदि विज्ञान का अध्यात्म के साथ समन्वय नहीं हो तो वह विज्ञान अभिशाप बन जाता है ।

२. जिसमें अहिंसा नहीं, वह विज्ञान नहीं ।

३. विज्ञान वह है जो जीवन को सही दिशा दे । जीवन को पवित्र और ऊंचा बनाए । अहिंसक जीवन जीना

सिखाए। जिस विज्ञान में यह नहीं इसके विपरीत हो, वह विगत ज्ञान होगा।

४. पदार्थ-विज्ञान की दृष्टि से विज्ञान को कोई बुरा नहीं कह सकता किन्तु उसका दुरुपयोग निन्दनीय है।

५. आज विज्ञान का हेतु विज्ञान नहीं अज्ञान है।

६. विज्ञान के विना संसार चल नहीं सकता और अध्यात्म के विना जीवन सूना है।

७. विज्ञान पर अध्यात्म का अंकुश रहना चाहिये। यदि वह न रहे तो विज्ञान संसार को निगल जाएगा।

८. विज्ञान तो वही है जो जीवन को शुद्धि की ओर ले जाए।

९. ज्ञान का परिष्कृत या विकसित रूप ही विज्ञान है या यों कहें कि प्रयोग सहित जो ज्ञान है उसका नाम विज्ञान है।

१०. ज्ञान और विज्ञान में कोई बहुत अन्तर नहीं। विज्ञान ज्ञान से परे नहीं है। विशिष्ट ज्ञान यानि अन्वेषण व खोजपूर्ण जो प्रायोगिक ज्ञान है, वही विज्ञान है। आज विज्ञान का सर्वत्र बोल बाला है। यद्यपि यह बुरा नहीं है, किन्तु उसका दुरुपयोग बुरा है।



विद्या

१. आजीविका के लिए विद्या की साधना बहुत छोटी बात है। अतः लक्ष्य महान रखो।

२. आत्म-विद्या सबसे बड़ी विद्या है यदि वह नहीं आई तो शेष सब विद्यायें भारभूत रहेंगी।

३. विद्या की वास्तविक शोभा है–विनय, विवेक और आचार।

४. विद्यार्जन का वास्तविक लक्ष्य है — जीवन को, जीवन की यथार्थता को और उसके अध्यात्म पक्ष को सम्यक् रूप से जानना, तदनुकूल वृत्तियों को अपने में प्रतिष्ठित करना, क्योंकि भारतीय संस्कृति केवल इहलौकिक इष्ट संस्कृति नहीं है।

५. विद्या वरदान है पर आचार शून्य होने से वह अभिशाप भी बन जाती है।

६. याद रखिये, अनुशासन और विनय के अभाव में प्राप्त विद्या अजीर्ण रोग के समान है।

७. विद्या का फल मस्तिष्क-विकास अवश्य है किन्तु है वह

प्राथमिक, उसका चरमफल आत्म-विकास है।

८. विद्या की साधना केवल पुस्तकीय ज्ञान हो यह वांछनीय नहीं। मुख्यतया आत्मानुशासन होनी चाहिये।

९. विद्यार्जन का मकसद केवल साक्षरता या ऊंची-ऊंची उपाधियां पा लेने से पूरा नहीं होता। उसका सही लक्ष्य है—जीवन को समझना, उसे संस्कारित बनाना।

१०. पढ़ने के बाद भी जिनमें संयम की साधना नहीं है, हेय-उपादेय का ज्ञान नहीं है, त्याज्य-ग्राह्य का विवेक नहीं है वे पंडित भी निरे अज्ञानी हैं।

११. वह विद्या अविद्या है जो अन्तरवृत्तियों में परिशुद्धि नहीं लाती।

१२. विद्या का सही लक्ष्य है—अपने आपको सुसंस्कृत बनाना, शान्ति और अन्तः तुष्टि के सच्चे मार्ग को पाना और उस पर चलने की योग्यता हासिल करना।

१३. विद्यार्जन का लक्ष्य परीक्षायें उत्तीर्ण कर ऊंची-ऊंची उपाधियां पा लेना मात्र नहीं है। इसका सही लक्ष्य आत्म-विकास और जीवन-शुद्धि है।

१४. पैसों से मिलने वाली विद्या पैसों तक ही पहुंचेगी, जीवन तक नहीं।

१५. विद्या वह है जो बन्धनों को तोड़ कर मुक्ति की ओर अग्रसर हो।

विद्यार्थी

१. विद्यार्थी का जीवन योगी का जीवन है। योगी साधना-काल में एक लक्ष्य, ध्यानस्थ, खाद्य-संयमी और गुरु के अधीन रहता है, वैसे ही विद्यार्थी भी अध्ययन काल में इसका पालन करें।

२. वृक्ष ज्यों-ज्यों फलता है वह नम्र बनता जाता है वैसे ही विद्यार्थी को भी विद्या की वृद्धि से नम्र बनना चाहिए।

३. विद्यार्थी यह स्मरण रखें कि उनके जीवन का लक्ष्य पुस्तकीय ज्ञान और उपाधियां प्राप्त कर लेना ही नहीं है, उनका सही लक्ष्य है—जीवन का निर्माण। जो विद्या के साथ विनय, विवेक व चरित्र आदि सद्गुणों के साहचर्य से होता है।

४. विद्यार्थी जीवन-निर्माण की वेला है। प्रत्येक विद्यार्थी को चाहिये कि वह जीवन में इस स्वर्णिम-काल का सदुपयोग करते हुए विकास के पथ पर अग्रसर हो।

५. अल्प-ज्ञान के कारण ही विद्यार्थी उच्छृङ्खल हो जाते हैं।

वे ही शिक्षित बन कर गम्भीर और शान्त बन जाते हैं।

६. छात्र-जीवन मानव-जीवन का महत्त्वपूर्ण भाग है जिसमें आगामी जीवन का निर्माण होता है।

७. अन्यान्य शिक्षाओं की तरह अध्यात्म शिक्षा भी विद्यार्थियों के लिए आवश्यक है।

८. विद्यार्थी-जीवन निर्माण का प्रथम सोपान है। भावी जीवन-रेखा का आदि बिन्दु है।

९. छात्रावस्था जीवन निर्माण की उर्वर भूमि है। इसमें वपन किया गया बीज शतशाखी के रूप में फलित होता है।

१०. विद्यार्थी जीवन अन्य जीवनों की रीढ़ है।

११. विद्यार्थी सच्चे ज्ञानार्थी बनेंगे तभी उनकी सफलता है।

१२. विद्यार्थी जीवन की तीन विरोधी बातें हैं — शृंगार, अनिष्ट सम्पर्क और प्रणीत रस का भोजन।

१३. मनुष्य को विद्यार्थी होना चाहिये। लोक धारणा ऐसी है कि व्यक्ति पहले विद्यार्थी बनता है और बाद में शिक्षक। पर मैं समझता हूँ कि व्यक्ति पहले शिक्षक बनता है और फिर विद्यार्थी।

१४. चारित्र्य के बिना विद्या भार है।

१५. तत्त्व ग्रहण करने के लिए हर व्यक्ति विद्यार्थी है। वृद्ध और जवान का इसमें प्रश्न नहीं। हर अवस्था में हर व्यक्ति को तत्त्व पाने के लिए विद्यार्थी रहना चाहिये।

१६. विद्यार्थियों (सुकुमार बालकों) का निर्माण करने वाली दो शक्तियां हैं — पहली माता-पिता और दूसरी शिक्षक-

शिक्षिकायें ।

१७. आचार शून्य विद्वता किसी काम की नहीं । जीवन आचारी होना चाहिए । विद्यार्थियों में ज्ञान और चरित्र दोनों की ही आवश्यकता है । दोनों मिल करके ही जीवन को विकसित, सफल और संस्कारित बना सकते हैं।

१८. किस समाज, देश और राष्ट्र का भविष्य कैसा है, इसका अन्दाजा वहां के विद्यार्थियों के जीवन से लगाया जा सकता है।

१९. विद्यार्थी का जीवन तो एक तपस्वी और योगी का जीवन है, वह आत्म-सृजन की उन अनूठी घड़ियों में से गुजरता है, जो फिर कभी आने वाली नहीं हैं ।

२० विनय विद्यार्थी-जीवन का भूषण है ।

२१. ब्रह्मचर्य पालन विद्यार्थी के लिए अत्यन्त आवश्यक है ।

२२. मैं स्वयं विद्यार्थी हूँ, इसलिए विद्यार्थियों में पहुंच कर बहुत प्रसन्न होता हूँ । मेरी नम्र मति के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को विद्यार्थी बने रहना चाहिए। विद्यार्थी रहने वाला जीवन भर नए-नए आलोक पाता है । विद्वान् बनने के बाद प्राप्ति का मार्ग रूक जाता है ।

२३. विद्यार्थियों को जीवन में जो सबसे बड़ी चीज प्राप्त करनी है वह है चरित्र-शीलता ।

२४. छात्र बीज है । वट विशाल वृक्ष का मूल बीज होता है । इसी तरह जीवन का मूल विद्यार्थी जीवन है ।

२५. विद्यार्थी जीवन अन्य जीवनों की रीढ़ है। जब तक वह सम्पन्न और समुन्नत नहीं होगा, देश, समाज और राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकते ।

विद्वान्—अविद्वान्

१. विद्वान् वही है जो दूसरों को जानने से पूर्व अपने आपको भली भांति जान ले ।
२. जो सब कुछ जान कर भी अपने आपको नहीं जानता वह अविद्वान् है ।

विधि-निषेध

१. विधायक तत्त्व उस उपेक्षा में कम व्यापक होते हुए भी थोड़े में नहीं बताया जा सकता ।
२. निषेध-तत्त्व व्यापक होते हुए भी थोड़े में बताया जा सकता है ।

विनय

१. विनय जीवन का आचार है ।
२. जो नम्र होता है वह सहज ही दूसरों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है ।
३. विनयपूर्वक ली गई विद्या पनपेगी और फूलेगी ।
४. विनय और गुलामी में तो बहुत बड़ा अन्तर है । गुलामी लालच, स्वार्थ व आकांक्षाओं से की जाने वाली खुशामद है और विनय इससे सर्वथा विपरीत ।
५. विनय विद्यार्थी-जीवन का आभूषण है ।
६. बड़ा वह बनता है जो नम्र होता है, अभिमान का त्याग करता है ।
७. विनीत विद्या प्राप्त कर सकता है, अविनीत नहीं । जैसे नम्र या पोली जमीन में बरसात का पानी नीचे तक बैठता है, लेकिन पथरीली जमीन पर बरसात काम नहीं करती ।
८. विनय के बिना जीवन-शृंखला नहीं बन सकती ।

९ वही परिवार सुखी और सम्पत्तिशाली है, जहां एक नेतृत्व के प्रति उसके सदस्य विनयी हैं।

विरोध

१. विरोध एक संघर्ष है और संघर्ष से ही ज्योति पैदा होती है।

२. जिस योजना का विरोध नहीं होता, वह पनप नहीं सकती।

३. विरोध से घबराने वाले खत्म हो जाते हैं और उठकर उसका सामना करने वाले विजय प्राप्त कर लेते हैं।

४. विरोध के सामने विरोध लेकर बढ़ोगे तो वह बढ़ेगा और यदि उसको पीठ देकर अपना कार्य करते रहोगे तो वह अपने आप खत्म हो जायेगा।

५. विरोध की स्थिति में घबरा जाने वाले दुनिया में कर भी क्या सकते हैं ?

६. जितने अवरोध प्रारम्भ में खड़े होते हैं उतने आगे नहीं रहते।

७. विरोध को मैं लाभकारी समझता हूँ, क्योंकि वह शक्ति को जागरूक रखता है।

८. किसी को विरोधी मान कर उसके कार्य में बाधक मत बनो। विरोध अपना दोष है, उससे अपना अहित होता है।

९. मानव को शत्रु मानना बुद्धि की कमी है। सजातीय तत्त्वों में विरोध नहीं होता। विरोध का आधार विजातीय तत्त्व हैं।

१०. भोग की वृत्ति से स्वार्थ, स्वार्थ से भेद और भेद से विरोध होता है।

११. जो विरोध का विरोध के द्वारा प्रतिकार नहीं करता वह अवश्य ही कोई सामर्थ्यवान व्यक्ति होता है।

१२. विरोध के सामने विरोध लेकर चलने में जहां समय की बर्बादी है वहां मानसिक पतन भी कम नहीं। विरोध को विनोद समझ कर हंसते-हंसते उसको लांघ जाना कायरता व कमजोरी नहीं बल्कि आत्म-बल का जीता जागता उदाहरण है।

१३. जो विरोध करने वाले हैं सम्भवतः उनके पास कोई काम नहीं वे निकम्मे बैठे हैं; अन्यथा वे विरोध करके कौनसी प्रगति कर लेंगे ?

१४. हमारा विरोध केवल आडम्बर से, धर्म के नाम पर होने वाले अधार्मिक आचरण से और धर्म के वहाने किए जाने वाले स्वार्थ पोषण से है।



९ वही परिवार सुखी और सम्पत्तिशाली है, जहां एक नेतृत्व के प्रति उसके सदस्य विनयी हैं।

विरोध

१. विरोध एक संघर्ष है और संघर्ष से ही ज्योति पैदा होती है।

२. जिस योजना का विरोध नहीं होता, वह पनप नहीं सकती।

३. विरोध से घबराने वाले खत्म हो जाते हैं और उठकर उसका सामना करने वाले विजय प्राप्त कर लेते हैं।

४. विरोध के सामने विरोध लेकर बढ़ोगे तो वह बढ़ेगा और यदि उसको पीठ देकर अपना कार्य करते रहोगे तो वह अपने आप खत्म हो जायेगा।

५. विरोध की स्थिति में घबरा जाने वाले दुनिया में कर भी क्या सकते हैं?

६. जितने अवरोध प्रारम्भ में खड़े होते हैं उतने आगे नहीं रहते।

७. विरोध को मैं लाभकारी समझता हूँ, क्योंकि वह शक्ति को जागरूक रखता है।

८. किसी को विरोधी मान कर उसके कार्य में बाधक मत बनो। विरोध अपना दोष है, उससे अपना अहित होता है।

९. मानव को शत्रु मानना बुद्धि की कमी है। सजातीय तत्त्वों में विरोध नहीं होता। विरोध का आधार विजातीय तत्त्व हैं।

१०. भोग की वृत्ति से स्वार्थ, स्वार्थ से भेद और भेद से विरोध होता है।

११. जो विरोध का विरोध के द्वारा प्रतिकार नहीं करता वह अवश्य ही कोई सामर्थ्यवान व्यक्ति होता है।

१२. विरोध के सामने विरोध लेकर चलने में जहां समय की बर्बादी है वहां मानसिक पतन भी कम नहीं। विरोध को विनोद समझ कर हंसते-हंसते उसको लांघ जाना कायरता व कमजोरी नहीं बल्कि आत्म-बल का जीता जागता उदाहरण है।

१३. जो विरोध करने वाले हैं सम्भवतः उनके पास कोई काम नहीं वे निकम्मे बैठे हैं; अन्यथा वे विरोध करके कौनसी प्रगति कर लेंगे ?

१४. हमारा विरोध केवल आडम्बर से, धर्म के नाम पर होने वाले अधार्मिक आचरण से और धर्म के बहाने किए जाने वाले स्वार्थ पोषण से है।



विवेक

१. आपमें श्रद्धा है पर श्रद्धा के साथ-साथ सद्विवेक चाहिए।

२. आत्म-बल का विकास ज्ञान एवं विवेक-जागृति पर निर्भर है।

३. मनुष्य के पास विवेक नामक एक विशिष्ट शक्ति है, जिसके द्वारा वह हेय क्या है, उपादेय क्या है, कार्य क्या है व अकार्य क्या है — इन सबका निर्णय कर सकता है।

४. भलाई और बुराई का विवेक होना मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है। उनको जाने बिना भलाई का ग्रहण और बुराई का परिहार कैसे हो सकता है?

५. मनुष्य विवेकी होने से बड़ा है किन्तु यदि वह विवेक आत्म-जागृति में नहीं लगता है तो मनुष्य पशु से भी कहीं ज्यादा गया बीता है।

६. विवेक ही वह विशेषता है जो मानवता और पशुता में भेद करती है।

७. विवेक के अभाव में व्यक्ति तर्जित, निन्दित और गर्हित होता है।

विश्व शान्ति

१. हिंसा के प्रचार के लिये आज जितने उपक्रम किये जा रहे हैं, अगर उतने अहिंसा के प्रचार के लिये किये जाय तो विश्व शान्ति की पुकार नहीं करनी पड़ती।
२. विश्व शान्ति का अर्थ अपना प्रभुत्व बढ़ाना नहीं है। उसका अर्थ है—दूसरों के अधिकारों पर हाथ न उठाना।

विश्वास

१. स्वयं विश्वासी बनो, यदि तुम में दूसरे के प्रति विश्वास है तो अवश्य ही दूसरे का विश्वास तुम्हें प्राप्त होगा।
२. विश्वास आपसी व्यवहार का मूल है।
३. सद्-विश्वास जीवन को सत्य पर डटे रहने की प्रेरणा देता है।
४. विश्वास आचरण से पैदा होता है। लेख और वक्तव्य उसे पैदा नहीं कर सकते।

वीरता

१. किसी को मार देने में वीरता नहीं, वीरता है मार सकने पर भी नहीं मारने में ।

२. सच्ची वीरता अपने आपको जीतने में है ।

३. सच्चा वीर और साहसी वही है, जो नैतिकता और सदाचरण के मार्ग पर सत्यनिष्ठा के साथ खेलता हुआ कठिनाइयों, बाधाओं और असुविधाओं की जरा भी परवाह न करे ।

४. किसी को मार डालना शूर-वीरता नहीं हैं, यदि ऐसा ही हो तब तो जंगली भेड़िया, बाघ, चीता आदि हिंसक पशु सबसे अधिक वीर माने जायेंगे ।

५. मारना वीरता नहीं, मरना सीखना वीरता है ।

६. अहिंसक सच्चा वीर होता है, वह स्वयं मर कर दूसरे की वृत्ति को बदल देता है, हृदय परिवर्तित कर देता है।

७. हाथ में ढेला लेकर दूसरे का सिर फोड़ने वाला वीर

नहीं होता है। वीर वह होता है जो दूसरे के द्वारा अपना सिर फोड़े जाने पर भी सहिष्णुता और समभाव से उसे झेलता है।

८. वीरता दूसरे को कष्ट पहुंचाने में नहीं बल्कि हंसते-हंसते कष्टों का हलाहल पी जाने में है।



व्यक्ति—समाज

१. मानव जाति के दो अंग हैं—स्त्री और पुरुष। दोनों में एक छोटा एक बड़ा नहीं हो सकता। पैरों से गति तभी सम्भव है जब दोनों समान हो, समाज-विकास में भी एक की हीनता अखरती है।

२. व्यक्ति-व्यक्ति का विकास ही समाज का विकास है।

३. अध्यात्म एवं समाज जीवन के दो पहलू हैं, किन्तु जब सामाजिकता व्यक्ति के अध्यात्मिक-विकास में बाधक बन जाती है, तब उसका प्रतिकार करना ही होता है।

४. व्यक्ति के परिमार्जन के बिना समाज का परिमार्जन कैसे सम्भव है? व्यक्ति-व्यक्ति से ही समाज बनता है। समाज की मूल भित्ति व्यक्ति है।

५. जब तक व्यक्ति नहीं सुधरेगा तब तक समाज और राष्ट्र सुधार का नारा क्या अर्थ रखेगा?

६. व्यक्ति ही समष्टि का मूल है ।

७. आज व्यक्ति का दृष्टिकोण ही गलत बनता जा रहा है। उसे जहां व्यक्तिवादी बनना चाहिए वहां वह समाजवादी बना और जहां समाजवादी बनना था वहां व्यक्तिवादी बन गया । अध्यात्म के मार्ग में जहां व्यक्तिवादी बनने की अपेक्षा थी वहां वह समाज-सुधार की भावना ले बैठा और व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को भूल बैठा। लोक-दृष्टि में जहां समाजवादी दृष्टिकोण की अपेक्षा थी वहां व्यक्तिवादी बना क्योंकि वहां उसका अपना स्वार्थ सधता है, यह वर्तमान की चिन्ताजनक स्थिति है ।

८ व्यक्ति के सुधरे बिना समाज सुधर नहीं सकता ।

६. समाज-परिवर्तन की मूल भित्ति व्यक्ति का परिवर्तन है।

१०. मानव-समाज को मिटा कर भौतिक स्वार्थ नहीं साधा जा सकता ।

११. पुरुष और नारी समाज-रचना के आधार हैं ।

१२. स्त्री और पुरुष समाज रूपी रथ के दो पहिये हैं ।

१३. व्यक्ति का अस्तित्व अपना है और समाज का अस्तित्व व्यक्ति है । व्यक्ति वस्तुवाद है और समाज सुविधावाद। व्यक्ति की आवश्यकता अपने आप पूरी नहीं हुई तब सापेक्ष स्थिति का उद्गम हुआ । सापेक्षता ने समाज को जन्म दिया ।

१४. जो व्यक्ति दूसरों के अधिकारों को छीन कर, कुचल कर और शोषणपूर्वक अर्थ-संग्रह कर धन कुबेर बनने की लालसा रखता है, वह अध्यात्म से बहुत दूर है।

१५. व्यक्ति-विकास को मैं समाज-विकास की नींव मानता हूँ।

१६. असंयम और अनुशासनहीनता को जहां खुल कर खेलने का मौका मिलता है, वहां व्यक्ति, समाज या राष्ट्र अर्थ सम्पन्न होकर भी सुख और शान्ति से सम्पन्न नहीं हो सकते।

१७. समाज का जागृत होना व्यक्ति पर निर्भर है। क्योंकि समाज की मूल इकाई व्यक्ति है।

१८. धर्माचरण का असर जितना व्यक्ति पर होता है उतना ही समाज पर होता है। अनैतिकता को त्यागने का जितना असर व्यक्ति पर होता है उतना ही समाज पर भी होता है।

१९. समाज में प्रवेश पाकर व्यक्ति ज्यों-ज्यों अपनी दुर्बलता का प्रतिकार पाता है त्यों-त्यों महत्वकांक्षा और स्पर्धा उसे शक्ति संग्रह के लिए प्रेरित करने लग जाती है।

२०. जिस प्रकार तापमान शून्य डिग्री से नीचे चला जाता है तो जीवन दुर्भर हो जाता है, उसी प्रकार समाज के अधिकांश व्यक्ति यदि सर्व साधारण नैतिक मान बिन्दु से नीचे खिसक आते हैं, तो समाज स्वस्थ नहीं रह सकता।

२१. आज लोग समाज में परिवर्तन चाहते हैं, पर वे समाज की रीढ़-व्यक्ति की ओर नहीं देखते, जिसका कि सामूहिक रूप ही समाज है।

२२. जब तक व्यक्ति में परिवर्तन नहीं आएगा, तब तक समाज में परिवर्तन आ जाए, यह किसी प्रकार भी सम्भव नहीं।

२३. व्यक्ति-परिवर्तन के माध्यम से किया गया समाज-परि-

वर्तन चिरस्थायी होगा और व्यक्ति परिवर्तन की उपेक्षा कर किया गया समाज-परिवर्तन दवे हुए रोग की तरह भविष्य में अनेक समस्याओं का उत्पादक बनेगा।

२४. संसार को सुधारने के लिए हमें व्यक्ति से शुरूआत करनी होगी, क्योंकि संसार रूपी भवन की नींव व्यक्ति ही है।



व्यवहारशुद्धि-आत्मशुद्धि

१. व्यवहार-शुद्धि के लिए आत्म-शुद्धि होनी चाहिए। सिर्फ व्यवहार-शुद्धि के आन्दोलन से दोष दब जाते हैं पर उसकी जड़ नहीं मिटती।



व्रत

१. व्रत ग्रहण के पहले मनुष्यों को तदनुकूल भूमिका बनानी चाहिए। व्रत एक बीज है। उर्वरभूमि में बीज फलित होता है, उसके अभाव में वह नष्ट हो जाता है। व्रत बीज के लिए हृदय को उर्वरभूमि बनाइये, अन्यथा व्रत फलीभूत नहीं होगा।

२. अजीर्ण की आशंका से क्या कोई कभी भोजन छोड़ता है? पर किसी कारण से अजीर्ण होने पर उसको मिटाने का प्रयास किया जाता है। भविष्य में पुनः न होने का ध्यान रखा जाता है, वैसे ही व्रतों के भंग की आशंका से उसे अस्वीकार नहीं करना चाहिए, पर ध्यान रखना चाहिए कि व्रतों का भंग न हो।

३. मकान का कलई आदि से नवीनीकरण और टूट-फूट को मरम्मत से ठीक किया जाता है। वैसे ही प्रायश्चित्तों से व्रतों को विशुद्ध और संकल्पों को दोहराने से उसका नवीनीकरण किया जाता है।

४. नींव के बिना भवन नहीं रह सकता। इसी प्रकार व्रत

के विना सही माने में जीवन-विकास का भवन खड़ा नहीं रह सकता ।

५. व्रत लेने मात्र से वे सफल नहीं होते । उनकी सफलता के लिए उनकी उपासना करनी होती है ।

६. व्रती बनने के बाद ईच्छायें सीमित नहीं होती, किन्तु ईच्छायें सीमित हो जाती है तभी व्रती बनते हैं ।

७. व्रतों की साधना नदी की अविरल धारा की तरह होनी चाहिए । वह क्या व्रत-साधना जो थोड़ी दूर चल कर ही सूखने वाली नदी की तरह सूख जाये या रूक जाये । व्रतों का धारावाहिक विकास ही जीवन में कुछ चेतना लाता है और तभी उसमें निखार आता है ।

८. व्रत आवश्यकताओं की पूर्ति होने न होने से सम्बन्धित नहीं है, इसका सम्बन्ध आत्मा की भावना से है ।

९. प्रतिकूल प्रसंग उपस्थित होने पर भी मानसिक विकारों पर नियन्त्रण बनाए रखना व्रत की वास्तविकता एवं साहस का परिचय है ।

१०. व्रतों का आन्दोलन कठिन होता है, यह मैं मानता हूँ पर साथ-साथ यह भी मानता हूं कि उसके बिना कठिनाइयों का पार नहीं पाया जा सकता ।

११. आज संसार को जिसकी आवश्यकता है, वह है मानसिक सन्तुलन । उसकी पूर्ति व्रत से ही सम्भव है ।

१२. व्रती-समाज की कल्पना जितनी दुरूह है, उतनी ही सुखद है ।

१३. व्रत लेने वाला कोरा व्रत ही नहीं लेता । पहले वह

विवेक को जगाता है, श्रद्धा और संकल्प को दृढ़ करता है, कठिनाइयां झेलने की क्षमता पैदा करता है, प्रवाह के प्रतिकूल चलने का साहस लाता है, फिर वह व्रत लेता है।

१४. विलास, भोग, बड़प्पन और ऐशोआराम व्रतों के शत्रु हैं।

१५. व्रतों का पालन शाब्दिक-वृत्ति से नहीं होना चाहिए। उनकी आत्मा का विकास होना चाहिए।

१६. व्रतों का अपना स्वतन्त्र मूल्य है। भौतिक अभिसिद्धि के लिए उनका प्रयोग व्रतों की उच्चता का अपमान है।

१७. केवल व्रतों की गुण गाथा गा लेने मात्र से कुछ भी बनने का नहीं।

१८ अहिंसा का जीवन में आचरण ही व्रत है।

१९. जो अवगुण आत्मा में घर कर गये हैं, उन्हें निकाल कर पुनः न आने देना ही व्रत ग्रहण का उद्देश्य है।

२०. यह भूल नहीं जाना चाहिए कि केवल व्रत ग्रहण ही सब कुछ है। व्रत तो जीवन की एक दिशा मात्र है।

२१. व्रत में महती शक्ति है। उनका विकास हुवे बिना सुख और शान्ति का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता।

२२. व्रत का सम्बन्ध हृदय से होता है। जब किसी कार्य के प्रति हृदय में विरोधी विचार पैदा होते हैं तब वह उससे पराङ्मुख होने की सोचता है।

२३. आत्मा से लालसा छूटे, भोग से मन हटे, यही वास्तव में व्रत का स्वरूप है।

२४. व्रत एक प्रहरी है जो आने वाली बुराइयों को रोक कर

मनुष्य की रक्षा करता है।

२५. जो व्रत निभाने के लिए जीवन को भी नगण्य मानते हैं, उनके लिए असम्भव कुछ भी नहीं है।

२६. व्रत एक कवच है जिसे पहन कर मनुष्य कहीं भी चला जाये तो वह उसकी बुराइयों से रक्षा करने में समर्थ रहेगा।

व्रत-कानून

१. व्रत हृदय को छूता है, अन्तर को पकड़ता है और जीवन को बदलता है। वहां कानून ऊपर से थोपा जाता है; बाह्य शरीर को पकड़ता है और भयभीत बनाता है।

२. कानून और व्रत का एक लक्ष्य होते हुए भी अन्तर इतना है कि कानून किसी को हरा सकता है, जीत नहीं सकता, व्रत हराता नहीं, पर दूसरे को जीतता है।

३. व्यक्ति कानन को भंग करते नहीं हिचकता, पर लिये हुवे व्रतों को तोड़ते समय उसकी आत्मा कांप उठती है।

४. भारतीय संस्कृति में व्रत भंग का व्यक्ति को जितना भय है उतना कानून का नहीं।

शराब

१. शराब की बोतल के खारे पानी ने मानव की मानवता का पानी उतार दिया है।

२ यदि आदमी सुख से जीना चाहता है तो वह शराब जैसे हालाहल का परित्याग कर सन्तवाणी-सुधा-संजीवनी का पान करे।

३ शराब से बचने का अर्थ है—अपने को गिरावट से बचाना और दुःखों से बचाना।

शत्रु

१. शत्रु-भाव एक शल्य है जो पल-पल चुभता रहता है, दूसरे की अपेक्षा अपना अधिक अनिष्ट करता है।

२. शत्रुता के हेतु हैं—स्वार्थ और अविश्वास।

३. जो व्यक्ति शत्रुता का सिर-दर्द मोल लेना न चाहे, वह अपने स्वार्थों को सीमित करे। सीमा की परिभाषा है—दूसरे के स्वार्थों को आघात पहुंचे, वहां तक न जाएं।
४. वैर से अनिष्ट दूसरे का नहीं होता, अपना होता है।
५. यदि मनुष्य अपने आप किसी की हिंसा न करे तो उसका कोई भी शत्रु नहीं है।

शासक

१. सच्चा शासक वह है जो अपने पर अनुशासन करे।

शास्त्र

१. आततायी की हिंसा का विधान करने वाला शास्त्र या शास्त्र का निर्दिष्ट अंश समाज-शास्त्र हो सकता है, धर्मशास्त्र नहीं।
२. धर्म-शास्त्र किसी भी परिस्थिति में हिंसा का विधान नहीं कर सकता।

शिक्षा

१. शिक्षा का उद्देश्य स्वयं को सुसंस्कृत बनाना है।

२. शिक्षा ही गम्भीरता की जननी है।

३ शिक्षा जबानी नहीं होनी चाहिए। वह अध्यापकों एवं अभिभावकों के आचरण में उतर कर बच्चों के सामने आनी चाहिए। उनकी आवाज ऊपरी न होकर हृदय की आवाज होनी चाहिए।

४. आप अपना जीवन विनम्र और अनुशासन-प्रिय बनायें, अपने आपको सुनागरिक बनायें और उत्तरोतर आत्मोन्नति करते जायें, इसी में शिक्षा पाने की सफलता है।

५. शिक्षा का प्रथम उद्देश्य जीवन का विकास है।

६. ज्ञान और शिक्षा का लक्ष्य है—जीवन उन्नत, विकसित और पवित्र बने।

७. शिक्षा की सफलता और सुरूपता के लिए मैं तीन बातों को आवश्यक मानता हूँ—शिक्षा अध्यात्मवाद का आधार लेती हुई हो, शिक्षकों का चरित्र निर्मल हो, ताकि वे

शिक्षार्थियों के समक्ष स्वयं एक मूर्त्त आदर्श हो, शिक्षार्थी सदाचार एवं संयम के प्रति निष्ठावान हों अर्थात् बहिर्मुख न होकर वे अन्तर्मुखी वृत्ति वाले हों।

८. शिक्षा का लक्ष्य जीवन-निर्माण होना चाहिए।

९. पुस्तकों में अक्षर-ज्ञान है, पर शिक्षा नहीं। शिक्षा तो जीवन से मिलती है।

१०. शिक्षा जीवन-बूंटी है जिसके द्वारा व्यक्ति का जीवन सात्विक और सुसंस्कारी बनता है।

११. वह ज्ञान या शिक्षा जड़ है जो सदाचरण से सूनी हो।

१२. शिक्षा जीवन शोधन का अन्यतम साधन है।

१३ [illegible] अर्जन करने वाला व्यक्ति बड़ा विद्वान् बन सकता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह शिक्षित हो। इसके प्रतिकूल अल्प विद्या वाला व्यक्ति शिक्षित हो सकता है।

१४. जीवन का हर व्यवहार यदि सत्-शिक्षा से अभिप्रेरित हो तो उसमें असंयम के लिए स्थान नहीं रहता।

१५. शिक्षा कहनी और करनी की भेद-रेखा को तोड़ती है। जहां यह रेखा नहीं टूटी, करना कुछ, कहना कुछ, ऐसा रहा, वहां शिक्षा का ध्येय पूरा नहीं हुआ।

१६. सक्रिय-शिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है।

१७. अक्षर-बोध शिक्षा का साधन है, शिक्षा नहीं।

१८. शिक्षा से गुण-दोष की परख आती है, हेय-आदेय की भावना जागृत होती है।

१९. आजीविका शिक्षा का उद्देश्य नहीं है।

२०. शिक्षा रूपी मुक्ताफल आध्यात्मिकता के धागे में पिरोये

जाते हैं, तभी वह जन-मन-हारी हार बन हृदय को सुअलंकृत कर सकते हैं।

२१. विद्या और शिक्षा में अन्तर है। विद्या का आशय है पढ़ना, किसी तत्त्व को जानना और शिक्षा का तात्पर्य है जाने हुए तत्त्व का पुनः व्यवहार—क्रम में अभ्यास करना, उसे जीवन में उतारना।

शान्ति

१. विश्व के सन्मुख दो ही मार्ग हैं—हिंसा और अहिंसा। एक हिंसा विनाश का पथ है, अहिंसा निर्माण का। एक अशान्ति और अराजकता उत्पन्न करता है तो दूसरा शान्ति और व्यवस्था।

२. मौत के तख्ते पर चढ़ा हुआ खूंखार दस्यु भी जीवन-दान की बात सुन शान्ति अनुभव करता है।

३. यदि विश्व को विनाश से बचा कर शान्ति से आप्लावित करना है तो हमें जातीय, प्रान्तीय, वर्गीय और भाषाई-भेदों का परित्याग कर आदर्श और व्यवहार का सामंजस्य करना होगा।

४. एक शान्त व्यक्ति विश्व-शान्ति का निमित्त बनता है और एक अशान्त व्यक्ति अशान्त विश्व का।

५. शान्ति का साधन उद्जन बम, रांकेट, स्पुतनिक आदि कोई भी घातक शस्त्र नहीं है, उसका साधन अहिंसा है।

६ शान्ति आने का एक ही सही मार्ग है—अहिंसा का अवलम्बन।

७. जीवन में सत्य की खोज की जाय और उसे जीवन में उतारा जाए।

८. मनुष्य अपने अधिकारों से बाहर न जाये तभी शान्ति की पुकार सफल हो सकती है।

९. चारों ओर शान्ति की पुकार है, पर शान्ति का मार्ग नहीं मिल रहा है, क्योंकि जहां पर शान्ति की खोज है वहां शान्ति नहीं और जहां शान्ति है, वहां उसे पाने की खोज नहीं।

१० दूसरे की शान्ति लूटकर अगर कोई स्वयं शान्ति पाना चाहता है तो वह शान्ति टिकती नहीं।

११. शान्ति का मार्ग है अपने अधिकारों में सन्तोष करना दूसरों के अधिकारों को न हड़पना और सहिष्णुता रखना।

१२ आन्तरिक-शान्ति का एक मात्र साधन है—धर्म, यदि उसके साथ सौदे बाजी न कर उसका सही माने में जीवन में प्रयोग किया जाय।

१३. बिना सन्तोष के शान्ति नहीं। बिना आत्मा पर नियंत्रण किये तृष्णा की आग भभकती ही रहेगी और उसमें परम स्वर्गीय शान्ति स्वाहा होती रहेगी।

१४. सचमुच यदि मनुष्य को शान्ति चाहिए तो सबसे पहले अपेक्षा है कि तदनुकूल श्रद्धा बनाए और अपनी चेतना

को प्रबुद्ध करे।

१५. विलासिता का जीवन जीने वाले कभी शान्ति को छू तक नहीं सकते।

१६. शान्ति का श्रोत आत्मा है, वह श्रोत भौतिक साधनों में नहीं।

१७. सुख-सुविधा या आवश्यकता की पूर्ति जीवन-निर्वाह का साधन अवश्य है, पर वह शान्ति की मंजिल नहीं।

१८ शान्ति का बाधक तत्त्व उन्माद का व्यामोह है।

१९. शान्ति का प्रकाश अभय के सान्निध्य में फैलता है।

२०. आत्म-निर्माण के बिना न तो शान्ति मिल सकती है और न सही अर्थ में जीवन का स्तर ऊँचा उठ सकता है।

२१. जब तक जीवन-व्यवहार में दम्भ रहेगा, हिंसक वृत्तियां रहेंगी तब तक शान्ति का समावेश जीवन में हो सके यह कम सम्भव लगता है।

२२. शान्ति अहिंसा और संयम पर आधारित है।

२३. जब तक असद्-वृत्तियां खुली रहेंगी तब तक शान्ति का निर्बाध पथ पाना असम्भव है।

२४. तृष्णा और आकांक्षा का गुलाम बना मानव धन कुबेर होने पर भी शान्ति का उतना अनुभव नहीं कर सकता, जितना कि एक सन्तोषी निर्धन होने पर भी कर सकता है।

२५. शान्ति का साधन सौमनस्य है। सौमनस्य का मार्ग है—हम दूसरों के अपराधों की गांठ बांध न बैठें।

२६. वास्तविक शान्ति धन में नहीं, संयम, सादगी और सात्विक वृत्तियों में है।

२७. जो मनुष्य अपनी बाहरी प्रवृत्तियों पर जितना अंकुश लगा सकेगा, वह उतनी ही शान्ति का अनुभव कर सकेगा।

२८. मानसिक समाधि के बिना शान्ति नहीं होती।

२९. मानवीय विचारणा का सर्वोपरि मूक और मधुर परिपाक शान्ति है।

३०. शक्ति-सन्तुलन शान्ति के प्रयोग का क्षणिक उपशम भले ही करदे, किन्तु वह अकुतोभय शान्ति का मार्ग नहीं बनता।

३१. बहुश्रुतता के बिना जीवन सरस नहीं बनता। वैसे ही आत्म-गुप्तता या स्थिर-प्रज्ञता के बिना जीवन में शान्ति नहीं आती।

३२. सचमुच शान्ति चाहिए तो सबसे पहली अपेक्षा है कि उसके अनुकूल श्रद्धा बने और चेतना जागे।

३३. शान्ति का साधन भौतिक पदार्थ नहीं, अहिंसा या समता है।

३४. शान्ति को खतरा मूढ़ता से है। मूढ़ता तब आती है जब शक्ति, अधिकार और पदार्थ के लिए मानव-मन झूम उठता है।

३५. शान्ति का साधन एकमात्र आत्मसंयम है।

३६. ईमानदारी का प्रयोग जीवन में सचमुच शक्ति का संचार करता है।

३७. शान्ति उस आह्लाद का नाम है जिससे आत्मा में जागृति, चेतनता, पवित्रता, हलकापन और मूल स्वरूप की अनुभूति होती है।

३८. एक वह भी शान्ति संसार में कही जाती है जो भौतिक (पौद्‌गलिक) इष्ट वस्तु प्राप्ति के संयोग से क्षणिक शारीरिक एवं मानसिक परितृप्ति के रूप में प्राणी के अनुभव में आती है परन्तु यह शान्ति, अशान्ति की कारणभूत होने से वास्तविक शान्ति नहीं है ।

३९. आत्मशान्ति अन्तरात्मा से उद्‌भूत होती है ।

४०. अपनी शान्ति के लिए संग्रह कम करो ।

४१. अपनी शान्ति के लिए दूसरे की शान्ति का अपहरण मत करो । यही सच्ची शान्ति है ।

४२. शान्ति अपने आप में साध्य और अपने आप में साधन है । वह कहीं बाह्य जगत में नहीं रहती और न बाहरी वस्तुओं से वह मिल सकती है ।

४३. नये नये शस्त्रों के आविष्कार एवं निर्माण से कभी शान्ति नहीं हो सकती ।

४४. शान्ति सन्तोष में है, लालसा में नहीं ।

४५. शान्ति कहीं बाहर से नहीं आयेगी । उसका खजाना आपके पास है ।

४६. जो सहन करने का मंत्र नहीं जानता वह शान्ति से जी नहीं सकता ।

४७. शान्ति का निवास-स्थल है धर्म ।

शिक्षा के कलंक

१. आज की शिक्षण-पद्धति में व्याप्त संयम-शून्यता का ही यह परिणाम है कि आज छात्र जगत में प्रायः उच्छृ-खलता और आचारहीनता परिव्याप्त है।
२. उद्दण्डता, उच्छृ खलता, अविनय और अनुशासनहीनता— ये शिक्षा के कलंक हैं।
३. शिक्षा निर्दोष होती है फिर भी शिक्षार्थी या शिक्षित कहलाने वाले व्यक्ति सही अर्थ में शिक्षार्थी या शिक्षित नहीं हो तो शिक्षा के सिर पर कलंक का टीका लगे बिना नहीं रहता।

शिक्षा-केन्द्र

१. शिक्षा-केन्द्र वह उर्वर-भूमि है जो यदि अपने उद्देश्यों का यथार्थ रूप में परिपालन करे तो योग्य व्यक्तियों

के रूप में वे देश को बहुत ही बड़ी निधि दे सकते हैं।

२. शिक्षा का सही लक्ष्य जहां आत्म-विश्वास होना चाहिए, उसे वहां अधिकांशतः दृष्टि से ओझल रखा जा रहा है। यदि ऐसा नहीं होता और शिक्षा के केन्द्र इस कमी से अछूते होते तो यह कब सम्भव था कि ऐसा नैतिक दुर्भिक्ष देश में आ जाता।

शुद्धि

१. सरलता शुद्धि का मूल मन्त्र है।

२. यह निर्विवाद सत्य है कि आत्मसंयम का पालन सरल नहीं, कठिन है पर उसके विना उन्नति और शुद्धि भी सम्भव नहीं है।

शोषण-दान

१. शोषण न करने वाला स्वयं धन्य है, चाहे वह एक कौड़ी भी दान न दे।

२. शोषण का पोषण करने वाले दानियों की अपेक्षा अदानो बहुत श्रेष्ठ हैं।

३. शोषण का द्वार खुला रख कर दान करने वाला, हजारों को लूट कर कुछेक को देने वाला कभी धन्य नहीं हो सकता।

शोषण-संग्रह

१. मैं मानता हूँ कि शोषण और संग्रह आज की प्रमुख व भीषण समस्याएं हैं। किन्तु उसका स्थायी समाधान रक्त क्रान्ति नहीं हो सकता। रक्त क्रान्ति से समस्याएं दूसरे रूप में उभरेगी ही, किन्तु जहां तक अहिंसक क्रान्ति का प्रश्न है वहां इसको समूल नष्ट करने में शत-प्रतिशत सफल रहेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

२. महत्त्वाकांक्षा शोषण को जन्म देती है और शोषण अव्यवस्था को।

३. संग्रह और अशान्ति का उद्गम बिन्दु एक है। सामान्य स्थिति में वह अभिव्यक्त नहीं होगा। संग्रह के बिन्दु इधर रेखा बनाते चलते हैं तो उधर अशान्ति भी अपनी रेखा पर बढ़ती जाती है।

४. आपके संग्रह का अल्पीकरण अणु आयुधों को अपनी मौत मरने की स्थिति पैदा करेगा।

५. उत्पीड़न और शोषण का कारण भोग लिप्सा है, भौतिक सुख-सुविधाओं के प्रति होने वाली आसक्ति है।

६. आवश्यकताएं बढ़ती हैं, वहां उनकी पूर्ति के लिए आर्थिक लिप्सा बढ़ती है तब शोषण बढ़ता है। शोषण चाहे व्यक्तिगत, जातिगत और राष्ट्रीय—कैसा ही हो, उससे संघर्ष और दुर्भावना का जन्म हुवे बिना नहीं रहता।

७. जब तक दूसरों की अपेक्षा रहती है तब तक शोषण और दमन हुए बिना नहीं रह सकते।



श्रद्धा

१. दूध में घी कब से मिला यह कोई नहीं कह सकता। किन्तु दूध के साथ स्नेह का होना निश्चित है और वह भी श्रद्धा गम्य ही है। यदि प्रयत्न करें तो अवश्य ही स्निग्धत्व को दूध से अलग निकाल सकते हैं। उनके निकालने का मार्ग मन्थन प्रक्रिया है, ठीक उसी प्रकार आत्म-स्वरूप का दर्शन भी श्रद्धा, त्याग और संयम से ही होगा।

२. श्रद्धा आत्म-विश्वास का अमोघ आधार है।

३. श्रद्धा के बिना क्रिया का फल नहीं मिलता।

४. गुरु पर श्रद्धा रखे बिना ज्ञान नहीं आता, यदि आ भी जाये तो वह फलीभूत नहीं होता।

५. श्रद्धा के बिना व्यक्ति व्रती बन ही नहीं सकता।
६. श्रद्धा के बिना चारित्र और आचार शुद्ध नहीं रहते।
७. श्रद्धा का उत्कर्ष अभय है।
८. ज्यों-ज्यों श्रद्धा बढ़ती है त्यों-त्यों जीवन व्रतमय बनता जाता है।
९. श्रद्धा जहां स्वार्थ से जुड़ी रहती है वहां वह श्रद्धा का रूप दिखाती है, पर वास्तव में वह श्रद्धा नहीं होती।
१०. अगर किसी को कुछ पाना है तो वह श्रद्धालु बने।
११. मेरी अनुभूति है श्रद्धा के बिना गति या प्रगति का मार्ग दूसरा नहीं है।

श्रद्धा—आचार

१. श्रद्धा के स्थान श्रद्धा और आचार के स्थान आचार का महत्त्व है। श्रद्धा का कार्य आचार और आचार का कार्य श्रद्धा नहीं कर सकती, दोनों का समन्वय रूप ही लक्ष्य प्राप्ति का सही साधन है।

श्रद्धा—तर्क

१. श्रद्धा और तर्क जीवन के दो पहलू हैं। जीवन में दोनों की अपेक्षा है। व्यवहारिक-जीवन में न केवल श्रद्धा काम देती है और न केवल तर्क। दोनों का समन्वित रूप ही जीवन को समुन्नत बनाने में सहायक होता है। अतः तर्क के साथ श्रद्धा की भूमिका होनी चाहिए और श्रद्धा भी कर्क की कसौटी पर कसी हुई होनी चाहिए।

२. श्रद्धाशून्य-तर्क व्यक्ति को सही मार्ग नहीं देता।

३. जो कार्य आस्था से बनने का होता है वह तर्क की धारा से नहीं बनता।

श्रम

१. दूसरे के श्रम को छीनने की वृत्ति जब टूटती है तब अपने आप उसका जीवन आत्म-निर्भर, स्वावलम्बी और श्रमपूर्ण बन जाता है ।

२. जो व्यक्ति अपने श्रम पर निर्भर रहता है वह कभी महारम्भी और महापरिग्रही नहीं बनता ।

३. श्रम के द्वारा जीवन का सुखपूर्वक निर्वाह नहीं मानने से चोरी आदि कुप्रवृत्तियां बढ़ती हैं ।

४. श्रम ही जीवन है—यह हमारा घोष है । परन्तु श्रम सात्विक होना चाहिए । श्रम से सभी कार्य शक्य हैं । जो आत्मा श्रम में विश्वास करती है, उसके लिए कुछ भी अशक्य नहीं और जो श्रम से डरती है उसे सर्वत्र कठिनाइयां दिखलाई पड़ती है ।

श्रावक

१. श्रावक की पहिचान है—पाप-भीरुता और अनाग्रह-बुद्धि।

२. श्रावकपन उसमें है जिसमें त्याग और जीवन को संयममय बनाने का प्रयत्न हो।

श्रोता-वक्ता

१. यत्र-तत्र-सर्वत्र बातें बनाने और सुननेवाले अनेक मिलते हैं किन्तु वास्तविक सुनने और सुनाने वाले मिलने कठिन हैं।

२. सुनाने वालों में यदि त्याग और संयम का अभाव है तथा सुनने वालों में जिज्ञासा और विराग का अभाव है तो ऐसी स्थिति में न सुनाने वाले का ही कोई महत्त्व है, न सुनने वाले का ही।

३. खेती के लिए उर्वर-भूमि, अच्छे बीज और पर्याप्त वर्षा की अपेक्षा रहती है। इनमें से किसी एक वस्तु के अभाव में खेती नहीं हो सकती। इसी प्रकार सच्चे सुननेवाले, सुनाने वाले और सच्चे सिद्धान्तों के मिलने पर ही मानव-जीवन सफल और सार्थक बन सकता है, अन्यथा नहीं।



संकल्प

१. अपनी बुराई को मिटाने के लिए स्व-संकल्प के अतिरिक्त दूसरा और कोई प्रयोग नहीं हो सकता।

२. भविष्य में बुराइयां न आये; इसलिये संकल्प करना आवश्यक है।

३. बिना संकल्प का मन बिना ब्रेक की मोटर के बराबर है।

४. संकल्पों को दोहराने से व्रतों में दृढ़ता और ताजगी आती है।

५. संयम, नियमन और साधना-पूर्ण जीवन के लिए दृढ़ संकल्प की बहुत आवश्यकता है।

६. दृढ़-संकल्प आदर्शों से नीचे सरकते हुए जीवन को सहारा देता है, उसमें अभिनव बल का संचारकरता है।

७. मैं प्रतिज्ञा को कमजोरी नहीं मानता, बल्कि एक बहुत बड़ी वीरता मानता हूं।

८. जो मनुष्य आगे का संकल्प नहीं कर सकता, वह अपने भविष्य के बारे में भी संदिग्ध है।

९. वही मनुष्य प्रतिज्ञा कर सकता है, जो अपने मन को भविष्य में भी काबू रख सकता है।

१०. दृढ़ निश्चयी और लगनशील व्यक्ति यदि अपने निश्चय और लगन से काम ले तो वह अपनी जीवन-वृत्तियों को सात्विकता की ओर मोड़ सकता है।

११. संकल्प के बिना निष्ठा नहीं होती। निष्ठावान ही साधना में सफल होता है।

संकीर्णता

१. मेरी दृष्टि में संकुचितता स्थान व बातों से नहीं, हृदय से आती है। यदि मनुष्य का हृदय संकुचित है तो चाहे वह कितनी ही विश्वमैत्री की बात करें, वह विशाल नहीं बन सकता।

२. संकीर्णता और विशालता की पहचान बाहरी आकार नहीं हैं। दूरवीक्षण का संकड़ा काँच दर्शन देता है, क्या हम उसे संकीर्ण माने? हमारी दृष्टि को विशाल बनाए, वह संकीर्ण नहीं होता। भले फिर उसका बाहरी रूप कैसा ही क्यों न हो।

३. बाहर की सारी वस्तुओं से हटकर अपने आप में चले जाना, यह संकोच का व्यापक रूप है।

४. धर्म आत्म-शुद्धि का प्रतीक है, वहाँ संकीर्णता व अनुदारता है ही नहीं।

५. आजकल एक नई संकीर्णता और चल पड़ी है, चीज तो अच्छी है, मगर यह अपने मत, अपने सम्प्रदाय व अपने समाज की नहीं। अमुक मत, अमुक सम्प्रदाय, व अमुक समाज-विशेष की है, इसलिये ग्राह्य नहीं। किसी के अच्छे तत्त्वों को भी अगर ऐसा समझकर अग्राह्य समझा जाता है तो बुद्धि विपर्यय के सिवाय और कुछ नहीं।

संगठन

१. संगठन सामुदायिक साधना का उत्तम प्रकार है और उसे बनाए रखने के लिये मर्यादा आवश्यक है, वहाँ मर्यादा का साध्य संगठन और संगठन का लक्ष्य साधना बनती है।

२. जहाँ पारस्परिक एकत्व है वहाँ आनन्द का निवास है।

३. झाड़ू एक एक तिनका मिलाकर बनता है। जब तक सब तिनके एक मुट्ठी में बन्धे हुए हैं, वे घर के कचरे को साफ कर देते हैं, यदि वे अलग-अलग बिखर पड़े तो जो कचरा निकालने वाले थे वे स्वयं कचरा बन जाते हैं।

४. युवकों में जिस प्रकार शरीर बल है उसी प्रकार यदि उनमें चरित्र-बल भी हो तो संगठन टिक सकता है।

५. संगठन का आधार चरित्र होना चाहिए।
६. जहाँ चरित्र की असमानता होगी वहाँ एकता हो नहीं सकती।
७. जिस संस्था में जितने अधिक चरित्रवान एवं निःस्वार्थ व्यक्ति होंगे वह संस्था उतनी ही अधिक सजीव और दीर्घायु होगी। अन्यथा स्वार्थों के संघर्ष में संगठन कभी पिसकर मर जायेगा।
८. संगठन में अपने आपको महत्व नहीं दिया जाता वहाँ अपने अहं को गालना होता है।
९. केवल भावना से व्यक्ति चल सकता है, संघ नहीं चल सकता।
१०. संगठन का आधार प्रेम होता है, प्रेम का आधार विशु आचार।
११. आधार की सुव्यवस्थित शृंखला में जकड़ा रहने वाला संगठन ही वास्तव में मजबूत, दीर्घकालिक और विशुद्ध संगठन होता है।

संगति

१. मानव जैसी संगति करता है, वैसे ही गुणावगुण उसमें आते हैं।
२. सत्संग क्या-क्या नहीं करता? उससे बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं है।

३. सत्संग से बुद्धि की कुण्ठा दूर होती है, सत्य की प्रतिष्ठा होती है, गौरव की वृद्धि होती है, पाप दूर होते हैं और दूर-दूर तक प्रतिष्ठा का संचार होता है।
४. सत्संग में आकर ही मनुष्य श्रवण से लेकर मोक्ष तक की सुदूर, दु:साध्य व दुष्प्राप्य मंजिल पर विजय का झंडा फहरा सकता है। किन्तु यह सब होता है सन्तों के नजदीक आने से ही।
५. जो मनुष्य सच्चे सन्तों की संगत पाकर भी उतना लाभ नहीं उठाता जितना उसे उठाना चाहिए तो उससे बड़ा अभागा कौन होगा ?
६. सत्संगति मनुष्य की जड़ता का सफाया कर आत्मोन्नति का उत्तम से उत्तम साधन है।

संघर्ष

१. संघर्ष ही भेद लाता है-छोटा या बड़ा, बौद्धिक या कायिक।
२. किसी भी प्रकार के पारस्परिक संघर्ष में अशान्ति, असन्तोष एवं विनाश के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं हो सकता।
३. संघर्षों से शान्ति आ नहीं सकती।
४. जहाँ भेद-दृष्टि को प्रमुखता दी जाती है वहाँ साम्प्रदायिक झगड़े और संघर्ष पैदा होते हैं।

५. यदि जीवन में संघर्ष आता है और विवेक के साथ उसका सामना किया जाता है तो वह एक अभिनव ज्योति देता है पर यदि अविवेक से यों ही संघर्ष खड़ा किया जाता है तो उससे शक्ति का दुरुपयोग होता है।

६. संघर्ष से भागना या अनावश्यक संघर्ष मोल लेना दोनों ही अनुचित है।

७. भौतिक उन्नति के भवन का निर्माण आशक्ति की ईंटों से होता है।

८. जहाँ आशक्ति है, राग-द्वेष का प्राबल्य है और है तव मम का सीमातीत भेद वहाँ उद्वेग है, संघर्ष है, दमन है, युद्ध है और अशान्ति है।

९. बलात् दूसरों पर अपनी संस्कृति या वाद लादने की चेष्टा करना संघर्ष का दूसरा रूप है।

१०. वर्ग-संघर्ष जैसी विकट समस्या अहिंसा और सन्तोष का पथ लिये बिना स्थायी रूप से सुलझ नहीं सकती।

११. संघर्ष अशान्ति का मूल है।

१२. जहाँ दो हैं वहाँ संघर्ष है। बिना संघर्ष के जीवन में चमक नहीं आ सकती।

१३. संघर्ष का हेतु विविधता या भेद है।

१४. संघर्ष के परिणाम हैं—चिनगारी, ताप और सर्वस्व नाश।

संतुष्टि

१. आवश्यकताओं की पूर्ति करके हम सन्तुष्ट बन सकें यह कभी नहीं होगा। सन्तुष्टि व्यक्ति की अपनी होती है, पदार्थ की नहीं।
२. सन्तुष्टि का मतलब है-स्वनियमन अर्थात् स्वतंत्रता।
३. आत्म-सन्तोष का एक मात्र मार्ग आत्म संयम है।

संदेह

१. उपेक्षा सन्देह उत्पन्न करती है।
२. संशयशील मनुष्य समाधि (आत्म शान्ति) को नहीं पा सकता।
३. संदेह से असहिष्णुता, असहिष्णुता से भय, भय से अशान्ति पैदा होती है।

सम्प्रदाय

१. सम्प्रदाय का अर्थ संकीर्ण और संकुचित बाड़ा-बन्दी नहीं है और न वह पारस्परिक वैमनस्य, संघर्ष और कलह फैलाने का हेतु है। उसका तो अर्थ है—गुरु-क्रम (गुरु परम्परा) सत्य या यथार्थ के अन्वेषण की एक धारा।

२. साम्प्रदायिक आग्रह जहाँ पलता है वहाँ तत्त्व-चिन्तन की दिशा नहीं बनती। तत्त्व-चिन्तन की दिशा बने बिना मूल्यांकन की दिशा सही नहीं बनती।

संयम

१. चरित्र न तो किसी दूसरी जगह से आता है और न खरीदा ही जा सकता है।

२. संयम का मतलब है—आत्मनियन्त्रण। जहाँ इसकी कमी होती है वहाँ अधर्म की उत्पत्ति होती है।

३. संयम का अभाव होने से घर घर में झगड़े होते हैं, समाज और राष्ट्र में विग्रह फैलते हैं।

४. संयम सच्चे सुख और शान्ति का हेतु है।

५. संयम से आत्मानुशासन पैदा होता है। आत्मानुशासन से स्वतंत्रता का स्त्रोत निकलता है।

६. संयम समाज का कानून नहीं, व्यक्ति की स्वमर्यादा है।

७. असंयम के घोर अन्धकार में संयम की कुछ किरणें भी पथ निश्चित बना देती है।

८. संयम का लगाव न गरीबी से है न अमीरी से। इच्छाओं पर विजय हो—यही उसका स्वरूप है।

९. सयमी वही रह सकता है, जिसकी संयम में श्रद्धा हो।

१०. संयम जीवन में शान्ति लाने का अमोघ हेतु है। सरलता, सादगी, सात्विक आदि इसीसे फलित होने वाले गुण हैं।

११. जिस प्रकार मेघ के साथ विद्युत का निवास है, उसी प्रकार सयम के साथ सहज रूप में पुण्य विद्यमान रहता है।

१२. लौकिक रूप में संयम की उपयोगिता है और उसके अभाव के कारण ही विधान, कानून आदि की असफलतायें होती हैं।

१३. यदि आपको जीवन की विश्रृंखलता को मिटाना है व उसे व्यवस्थित, नियमित और शान्तिमय बनाना है तो अपनी वृत्तियों को संयमित बनाइए।

१४. संयम की साधना ही शान्ति की साधना है।

१५. सन्यस्त जीवन संयम का सक्रिय प्रतीक है।
१६. संयमित जीवन-चर्या की साधना के लिए सम्यक्-चिन्तन के साथ-साथ सम्यक्-श्रद्धा और क्रियाशीलता की अपेक्षा है।
१७. जहाँ आज भौतिकवाद का नारा है कि आवश्यकताएं बढ़ाओ, उद्योग बढ़ाओ जिससे समृद्ध बने। वहाँ हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि जितनी लालसा बढ़ेगी, मानव को उतना ही दुःख होगा। सुख-शान्ति के लिए त्याग मार्ग पर ही आना होगा, जीवन को संयम प्रधान बनाना होगा।
१८. गरीबी दीनता है, इसलिए अच्छी नहीं है। अमीरी शोषणाश्रित है, वह भी अच्छी नहीं। अच्छा और सही मार्ग संयम है।
१९. संयमशील जीवन अपनाना ही सच्ची श्रद्धाञ्जलि है। संयमशील बनना ही सच्ची उपासना है।

संस्कार

१. व्यक्ति के जीवन में अच्छे या बुरे सारे संस्कार अपने ही नहीं होते वरन कुछ संस्कार पैतृक या जन्मजात भी होते हैं।
२. संस्कार ऊँचे होते हैं तो संस्कृति भी ऊँची बन जाती है।

संस्कृत

१. संस्कृत राष्ट्र की आध्यात्मिक निधि की संरक्षिका है।

२. संस्कृत का केवल इसलिए महत्त्व नहीं कि वह हमारे देश की प्राचीन भाषा है, वरन् उसका महत्त्व इसलिए है कि वह भारत के सांस्कृतिक जीवन का एक जीवित प्रतीक है।



संस्कृति

१. आचार और विचार की रेखाएं बनती हैं और मिटती हैं। जो बनता है वह निश्चित मिटता है, किन्तु मिटकर भी जो अमिट रहता है अपना संस्थान छोड़ जाता है वह है संस्कृति।

२. जब आचार नहीं तो विचार से क्या बने ? इसलिए थोथे विचारों के भँवर में न फंसकर, आचार मूलक विचारों की भावना जागे, संयम और स्वशासन की वृत्ति बढ़े, यही सही अर्थ में संस्कृति के चिन्तन का सुफल है।

३. जैन संस्कृति आध्यात्म की संस्कृति है।

४. आध्यात्म मूलक संस्कृति में विकास के चार साधन हैं– लज्जा, दया, संयम और ब्रह्मचर्य। लज्जा से मतलब बुरे कार्यों को करते हुए संकोच का अनुभव होना, दया से मतलब है सबको समान समझना, संयम का मतलब है पापाचरणों में जाती हुई आत्मा को रोकना और ब्रह्मचर्य का मतलब है ब्रह्म की साधना।

५. संस्कृति जीवन का आचार पक्ष है।

६. संस्कृति एक ऐसा व्यापक तत्त्व है, जो भारतीय और अभारतीय नहीं हो सकता।

७ संस्कृति का उपासक व्यक्ति आग्रही नहीं होता, वह अच्छी वस्तु को हर कहीं से और हर समय ले सकता है।

८. जब तक कोई व्यक्ति वीतराग नहीं हो जाता तब तक उसकी संस्कृति नितान्त सत्य नहीं हो सकती।

९. संस्कृति के उपासक व्यक्ति को आग्रह शोभा नहीं देता।

१०. जो संस्कृति पुरुषार्थ की संस्कृति है, चिन्तन की संस्कृति है और समता की संस्कृति है उसका नाम है—श्रमण-संस्कृति।

११. संस्कृति का सर्वोच्च पक्ष आन्तरिक-विकास है।

१२. मजबूत संस्कृति की छत्र-छाया में पलने वाली सभ्यता ही टिकाऊ बनती है।

१३. भारतीय संस्कृति का लक्ष्य चरित्र-विकास है, चरित्र को गंवाकर कुछ भी पा लेना यहाँ घाटेका सौदा माना गया है।

१४. जैन संस्कृति आत्म उत्सर्ग की संस्कृति है।

१५. दुःख मिटाने की वृत्ति और शोषण, उत्पीड़न तथा अपहरण साथ २ चलते हैं। इधर शोषण और उधर दुःख मिटाने की वृत्ति यह उच्च संस्कृति नहीं।

१६. सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह—इस त्रिवेणी से उत्पन्न होने वाली संस्कृति ही सर्वश्रेष्ठ हो सकती है।

१७. संस्कृति सदा एक रूप रहती है और उसका एकमात्र कार्य जीवन का परिमार्जन है।

१८. संस्कृति भाव एवं भाषा का संगम है, भाव जहाँ वैयक्तिक होता है वहाँ भाषा सामाजिक होती है।

१९. संस्कृति तो मांजने को कहते हैं जिसके द्वारा जीवन एवं जीवन की पद्धति का संस्कार एवं परिमार्जन होता है।

२०. भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि उसमें किसी के अधिकार के अपहरण, राज्य सीमा विस्तार, विध्वंसक शस्त्रास्त्रों आदि के निर्माण की शिक्षा नहीं दी जाती बल्कि हेय (त्याग) की शिक्षा दी जाती है।

सच्चा मंगल

१. जोवन के लिए सच्चा मंगल वह है जो उसे आत्मशुद्धि की ओर ले जाए।



सच्चा साम्यवाद

१. आप अपने हित और सुख-सुविधाओं के लिए दूसरे का हित और सुख-सुविधाएं कभी न लूटें, यही सच्चा साम्यवाद है।



सत्य

१. सत्य का फल मधुर है और साधना कठिन।

२. मनुष्य झूठ के बिना जीवित रह सकता है पर सत्य के बिना नहीं।

३. सत्य का रूप एक है, उसके शोधन अनेक।

४. सत्य की व्याप्ति एक है पर देश, काल और स्थितियां अनेक।

५. मनुष्य के चिन्तन और वर्तना में सच्चाई होनी चाहिए।

६. सत्य-पथ के अनुसरण से ही सत्य का लक्ष्य पूरा हो सकता है।

७. झूठ मत बोलो, पर ऐसा सत्य भी मत बोलो जिसमें हिंसा का समावेश हो।

८. सत्य अहिंसा का वचनामृत या भाव प्रकाशानात्मक पहलू है।

९. जब तक जीवन में अहिंसा नहीं आती, सबको समान मानने की भावना विकास नहीं पाती तब तक सत्य का भी आचरण नहीं होता।

१०. सत्य में सदाचार का अखण्ड स्वरूप समाया हुआ है, उसका कोई भी अंश सत्य की सीमा से बाहर नहीं। सत्य कोई छोटी-मोटी पगडण्डी नहीं, वह राजपथ है जिस पर आत्म-विश्वास के साथ अग्रसर हुआ जा सकता है।

११. सत्य जितना उपादेय है उतना ही जटिल और छिपा हुआ है, उसको प्रकाश में लाने का एकमात्र साधन है—शब्द। उसी के सहारे सत्य का आदान-प्रदान होता है। शब्द अपने आप में सत्य या असत्य, कुछ भी नहीं है। वक्ता की प्रवृत्ति से वह सत्य और असत्य बनता है।

१२. सत्य का अर्थ है—जैसा सोचे वैसा बोले।

१३. सच्चाई से काम नहीं चल सकता—यह आत्म-साहस और आत्म-बल से हीन व्यक्तियों की वाणी है।

१४. सत्य का आचरण न करनेवाला इतना बुरा नहीं है जितना यह माननेवाला कि सत्य से जीवन में काम नहीं चल सकता।

१५. सत्यवादी कहीं भी भयभीत नहीं होता।

१६. जहाँ सरलता है वहाँ सत्य है।

सफलता-असफलता

१. सफल का अर्थ है निष्ठावान।

२. जीवन की सफलता इसी में है कि मानव सही माने में अपने कल्याण या विकास के लिए आगे बढ़े।

३. सफलता की मूल पूंजी मानव की भावना है।

४. आशावाद में सफलता रहती है।

५. जो अपना सारा समय खाने-पीने और सोने जैसी तुच्छ क्रियाओं में ही गंवा देते हैं, जो न सत्संग करते हैं, न साहित्य अध्ययन, न आत्मलोचन और न आत्मानुसंधान, उनका जीवन बकरी के गले में पैदा हुए स्तनों के समान बिल्कुल बेकार और निरर्थक है। जीवन सफल और सार्थक उनका ही है जो अपने बहुमूल्य समय को सत्प्रवृत्तियों में लगाते हैं।

६. दूसरे के दोष देखना सुगम है, पर अपने दुर्गुणों पर दृष्टिपात होना बड़ा ही कठिन है किन्तु जो इसमें निष्णात हो जाता है, वह प्रत्येक काम में बहुत शीघ्र सफल हो सकता है।

७. चिन्तनपूर्वक किया हुआ कार्य अधिक सफल होता है।

८. लक्ष्य की ओर ओत-प्रोत (तल्लीन) हुए बिना उसमें सफलता नहीं पा सकेंगे।

९. उद्देश्य की सफलता और उपलब्धि उसी कार्यक्रम में निहित रहा करती है जो कार्यक्रम मनुष्य को उद्देश्य की सीमा में पहुंचाने की महानता रखता है।

१०. सफलता का यही रहस्य है कि मानव-वृत्तियों का संचालन, प्रवर्तन और उसका रहन-सहन निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार चले और स्थायी रहे।

११. यदि अन्य समस्याओं के साथ-साथ चारित्रिक समस्या के समाधान का पूरा सामंजस्य नहीं हुआ तो सफलता नहीं मिलेगी।

१२. जावन की सफलता है आत्म-परिमार्जन, आत्मोज्ज्वल्य।

१३. जो व्यक्ति अपना उत्तरदायित्त्व नहीं समझता, वह किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकता।

१४. जब तक सब लोग स्वतन्त्र हृदय से लालसा का अवरोध नहीं करेंगे, तब तक वे समाजवाद का समर्थन करनेवाले हों, चाहे साम्यवाद का सम्मान करने वाले हों, चाहे जनतंत्र की मंत्रणा रखने वाले हों, चाहे और २ मनोवांछित वाद-विवादों की कल्पना करने वाले हों अमन चैन की कामना को सफल नहीं बना सकते।

१५. बीसवीं सदी का मानव स्वतंत्रता की रट लगाने में जितना सभ्य बना उतना सभ्य स्वतंत्रता की रक्षा में नहीं बना।



समन्वय

१. समन्वय उन तत्त्वों का होना चाहिये, जिनमें मिलने की क्षमता हो, जिनके मिलने का उपयोग हो।

२. आग्रह-हीनता समन्वय और मेल का आधार है।

३. भोग से सुख नहीं मिला तब त्याग आया, दूसरे जीते नहीं गये तब अपनी विजय की ओर ध्यान गया, हुकूमत बुराइयां नहीं मिटा सकी तब 'अपने पर अपनी हुकूमत' का पाठ पढ़ाया गया। आग से आग नहीं बुझी, तब प्रेम से बुझाने की बात सूझी। ये वे सूझें हैं जिनमें चैतन्य है, जीवन है, दो को एक में मिलाने की क्षमता है।

४. समन्वय एक मेल जोल वाला तत्त्व है। वह सबको एक बनाता है, मिलाता है।

५. अहिंसा की मीमांसा में स्याद्वाद के अध्याय का योग अधिक महत्त्वपूर्ण है। इससे समन्वय की दृष्टि और दूसरों के विचारों को समझने की भावना का महत्त्वपूर्ण विकास हुआ है।

समय

१. समय अपनी गति से चलता है। अपने आप में उसका कोई मूल्य हो या नहीं किन्तु इसकी परिधि में जो रहते हैं उनके लिये समय ही बहुत मूल्यवान है। लाभान्वित वही होता है जो उसका मूल्य आंक सके।

२. समय एक ऐसी अनोखी वस्तु है जिसकी कभी पूर्ति नहीं की जा सकती।

३. काल में परिवर्तन नाम की ऐसी आलौकिक शक्ति विद्यमान है जिसके कारण वह पुरातन को नवीन और नवीन को पुरातन में परिणत करता हुआ, सदा अपना अस्खलित चक्र घुमाता रहता है।

४. समय में कितनी बड़ी ताक़त है कि एक कुशल से कुशल और बलवान से बलवान व्यक्ति भी समय की अविद्यमानता में कुछ नहीं कर सकता। अतएव व्यवहारिक जीवन में, काल द्रव्य जितना कीमती है उतना दूसरा और कोई द्रव्य नहीं।

५. मनोनुकूल चर्चा में समय की ओर ध्यान नहीं जाता। समय का प्रश्न वहाँ उठता है जहाँ मन के प्रतिकूल स्थिति हो।

समस्या का हल

१. भौतिक उपकरणों पर स्वत्त्व का विसर्जन करें तो हमारी सारी समस्याएं आध्यात्म व अहिंसा से सुलझ सकती हैं।

२. संघर्ष, विध्वंस व विप्लव के द्वारा समस्याओं को सुलझाने का जो उपक्रम है, वह वास्तविक सुलझाव नहीं, वह तो उलझाव है।

३. प्रत्येक वर्ग के व्यक्ति के समक्ष अपनी २ समस्यायें होती है उन समस्याओं का हल उचित मानवीय तरीकों से ही होना चाहिए।

४. बड़ी से बड़ी समस्या के समय भी यदि हिम्मत और आत्मबल से काम लिया जाय तो समाधान मिल सकता है।

५. जीवन की विकट समस्याएं अहिंसा, सत्य, मैत्री और सद्वृत्ति से ही सुलझ सकती हैं और यह सुलझन क्षणिक नहीं शाश्वत और चिरंतन होती है।

६. समस्याओं के समाधान के दो मार्ग हैं—नये आविष्कार और संयम। एक में सुख मर्यादित है, वह भी क्षणिक और भौतिक। दूसरे में असीम सुखानुभूति है।

सह अस्तित्व

१. दोनों विरोधी तत्त्वों का साथ रहना ही सहअस्तित्व है।

सहयोग

१. परस्पर सहयोग से प्रेम की भावना का विस्तार होता है तथा वह धर्म हो या न हो पर व्यक्ति को धर्म के लि सक्षम बनने में सहायक अवश्य होता है।

सहिष्णुता-असहिष्णुता

१. सहनशीलता सबसे बड़ी शक्ति है।

२. आज जो भी व्यक्ति वाणी को सहन कर लेता है वही सहनशील है।

३. जो भी संदिग्ध होगा, वह सहिष्णु नहीं होगा।

४. असहिष्णुता से कलह होता है, लड़ाइयां होती है और युद्ध होता है।

५. असहिष्णुता से वैर बढ़ता है, वैर से चरित्र में विकार और उससे सुख-शान्ति की रेखा क्षीण हो जाती है।

६. संकीर्णता और साम्प्रदायिकता की भावना को मिटाने के लिए लोगों को चाहिए कि वे अपनी नीति मण्डनात्मक रखें, अपने विचारों का मतभेद होने पर वातावरण को खराब न बनाकर उसके प्रति सहिष्णु बने रहें।



साधना

१. साधना के उत्कर्ष का अर्थ है, विचारों में अनाग्रह बढ़े, सत्य के अन्वेषण की वृत्ति बढ़े, आचार में पवित्रता बढ़े और अहिंसा एवं आत्म स्थिरता की भावना बढ़े।

२. विद्या और अविद्या में जो अन्तर है उसे समझ लेना ही जीवन की सर्वोपरि साधना है।

३. जो भी व्यक्ति अपना जीवन शान्ति पूर्ण ढंग से बिताना चाहे, उसे साधना का अवलम्ब लेना ही चाहिए।

४. साधना का पहला सूत्र भी यही है कि मनुष्य परिस्थिति के रहते हुए भी मानवता की रक्षा करे।

५. आत्म-शुद्धि के साथ साथ जन-शुद्धि का कार्य करना बहुत बड़ी कठोर साधना है।

६. धर्म की सच्ची साधना अपने जीवन को अधिकाधिक अहिंसा, सच्चाई, शोषणहीनता, निःस्वार्थपरायणता तथा समता आदि गुणों से ऊंचा उठाने में है।

७. साधना आत्म--मर्यादा है।

साधु

१. साधु स्वयं उठे और दूसरों को उठाये, यह उनका प्रमुख कर्त्तव्य है।

२. साधु सन्तों का आगमन जहाँ कहीं होता है वह धर्म जागृति के लिए होता है, वे घुसी हुई बुराइयों को निकाल फेंकने की प्रेरणा देते हैं, फिर सन्त किसी वेष के हों, किसी देश के हों यदि वास्तव में वे सन्त हैं, त्यागी हैं तो वंदनीय है अभिनन्दनीय है।

३. साधु का वेष वन्दनीय नहीं होता। वन्दनीय है उनके आचार, गुण और साधना।

४. सन्तों के पास सुनने से ही पाप-धर्म, न्याय-अन्याय, भलाई और बुराई का ज्ञान होता है।

५. सच्चे साधु वे होते हैं, जो कंचन और कामिनी के त्यागी होते है। वे न तो सामाजिक प्रपंचों में पड़ते हैं और न राजनैतिक उलझनों में उलझकर अपना समय बर्बाद करते हैं। वे न पूंजीपतियों के पिठलग्गू होते हैं और न

पूंजी कही जानेवाली वस्तुओं से ही अपना निजी गठबन्धन जोड़ते हैं। वे निःस्वार्थ-भाव से प्रेरित होकर स्वकल्याण के साथ-साथ एकमात्र परोपकार दृष्टि से जन कल्याण के लिए प्रतिपल अपनी मूल्यवान सेवायें प्रदान करते हैं।

६. साधु अपने आप पर नियंत्रण रखते हैं और ओरों को आत्म नियंत्रण का पाठ पढ़ाते हैं।

७. साधु इसलिए सुखी होते हैं कि उनमें संग्रह-वृत्ति नहीं होती।

८. सन्तों के लिए गमन और आगमन दोनों एक ही सरीखे हैं, आत्म साधना के साथ-साथ जन-कल्याण के लिए प्रयास करना उनका काम है। वे जहाँ भी जाते हैं वहाँ ही करते रहते हैं।

९. साधु किसी एक के नहीं, सबके हैं।

१०. साधु किसी सम्प्रदाय या जाति विशेष के नहीं होते वे तो जन–जन के हैं। वहाँ निर्धन-धनिक, मजदूर-व्यवसायी, पंडित-अपंडित, हरिजन या महाजन में किसी प्रकार का विभेद नहीं होता।

११. वह साधु कोई ऊंचा साधु नहीं जो केवल लाखों का नेतृत्व करे और मठों में बैठा रहे। सच्चा साधु तो वह है जो अपने अनुयायियों के सुधार के लिए कुछ प्रयत्न करे। केवल समाज बनाने मात्र से ही कुछ हो जाने वाला नहीं यदि उन्होंने अपने मठों का मोह नहीं छोड़ा।

१२. सन्तों का जीवन आत्म-स्वतंत्रता का जीवन है।

१३. संतों के उपदेश, संतों की शिक्षाएं, श्रद्धालुओं के जीवन में साकार हो जाए यही उसका वास्तविक अभिनन्दन है।

साध्य-साधन

१. साध्य को पाने के लिए साधन की शुद्धि बड़ा महत्त्व रखती है।

२. साधन-शुद्धि के बिना जीवन में पवित्रता नहीं आती।

३. अच्छे साध्य के लिए साधन भी अच्छे हों तभी सिद्धि सुन्दर, व्यापक और चिरस्थायी होगी।

सामन्तशाही

१. भोगवादी-मनोवृत्ति, संग्रहवादी-मनोवृत्ति, व्यक्तिवादी-मनोवृत्ति और परिवारवादी-मनोवृत्ति—ये सामन्तशाही के निश्चित परिणाम हैं।

साहित्य-साहित्कार

१. साहित्यकार में असीम शक्ति है। पर उसकी सार्थकता तभी है जब वह उसका सही उपयोग करे।
२. साहित्य जीवन का एक मधुर और सरल पहलू है।
३. हृदय को जैसी आनन्दानुभूति साहित्यानुशीलन में होती है वैसी अन्यत्र नहीं।

सिद्धान्त

१. सिद्धान्त से मौलिकता नहीं आती, मौलिकता के आधार पर सिद्धान्त स्थिर होते हैं।
२. सिद्धान्तवादिता से आलोचना प्रतिफलित होती है और अनुभूति से मौलिकता।

३. शाश्वत सिद्धान्त समय अथवा परिस्थिति वश बदल नहीं जाते। बदल जाए तो शाश्वत कैसे?

४. व्यक्ति की सूझ अपने दिमाग की सूझ है। वह क्षणिक है, बदलती रहती है। सिद्धान्त प्रवचन हैं, उनमें क्षणिकता नहीं होती, स्थायित्व होता है।

५. प्रत्येक कदम में सक्रियता होनी चाहिए तभी उस सिद्धान्त का रूप निखर पाता है।

सुख

१. सुख का अक्षय कोष हृदय है, वस्तुएं नहीं।
२. स्वयं पर स्वयं के अनुशासन बिना जीवन सुखमय नहीं हो सकता।
३. स्वभाव में आना चिरन्तन और शाश्वत सुख है।
४. सुख आत्मा का मूल स्वभाव है।
५. यदि आप सुखी बनना चाहते हैं तो दूसरों के सुख में बाधा न पहुंचाएं।
६. यदि आप धर्म के प्रति मजबूत रहेंगे तो सुख का द्वार आज नहीं तो कल जरूर खुलेगा।

७. सुख का श्रोत आत्मिक स्वतंत्रता में है। वह जब तक नहीं आती है तब तक बाह्य स्वतंत्रता मात्र से सुख सम्भव नहीं है।

८. एक व्यक्ति जिसकी बहुत कम आय है फिर भी यदि उसमें सन्तोष और आत्म-तुष्टि के भाव हैं तो वह कोट्याधीश से कहीं अधिक सुख और आनन्द में है।

९. सुख का हेतु अभाव भी नहीं है, अतिभाव भी नहीं है, लेकिन स्वभाव है।

१०. सुख हमारा अविभाज्य गुण है।

११. अगर अपने को सुखी बनना है तो सुख के मार्ग पर चलो, निसन्देह सुखी बनोगे।

१२. हम किसी को सुखी बनाने का ठेका तो नहीं ले सकते पर किसी के सुख को लूटे तो नहीं।

१३. सुख का हेतु अहिंसा या मैत्री है, उसका आधार अनपहरण है।

१४. याद रखिये, आप दूसरों के सुखों को लूटकर, खुद सुखी नहीं बन सकेंगे।

१५. आसक्ति की जितनी ही कमी होगी, सुखों की सहज प्राप्ति उतनी ही अधिक होगी।

१६. जो सुख अहिंसा, सत्य, शील, सदाचार जैसे गुणों की उपासना में है, वह भोगोपभोग में नहीं।

१७. सुख आत्मा का धर्म है, शरीर का नहीं। वह सन्तोष से पैदा होता है, धन से नहीं।

१८. यह दृढ़ सत्य है कि जब तक व्यक्ति स्वयं अपने लिए पड़ने वाली प्रतिकूल स्थिति को दूसरों के लिए करता रहेगा तब तक सम्भव नहीं है कि वह भी सुखी बन सके।



सुख-दुःख

१. सुख दो और दुःख मिटाओ की भावना में आत्म-विजय का भाव नहीं होता।

२. दुःख मिटाने और सुखी बनाने की वृत्ति व्यवहारिक है किन्तु क्षुद्र-भावना स्वार्थ और संकुचितवृत्ति को प्रश्रय देने वाली है।

३. सुख मत लूटो, दुःख मत दो। इसे विकसित करो। इसका विकास होगा तो दुःख मिटाओ-सुखी बनाओ की भावना अपने आप पूरी होगी।

४. सुख की अधिक लालसा भी सुख का कारण नहीं, प्रत्युत दुःख का ही कारण बनती है।

५. इच्छा की अपरिमितता दुःख और इच्छाओं का निरोध सुख है।

६. जिसमें दुःख न हो, वही सुख है।

७. आत्म-संयम का भाव और अभाव ही क्रमशः सुख और दुःख का कारण है।

८ आत्म-स्वभाव में स्थित रहना ही सही सुख है और परभाव में जाना अर्थात् बाह्य विचारों में फंसना ही दुःख है।

९. किसी वस्तु को छीनकर एक व्यक्ति को त्याग के लिए विवश कर देना और स्वयं किसी वस्तु का त्याग कर देना इन दोनों में बहुत अन्तर है। एक में जहाँ घोर अशान्ति, दुःख, खेद और असन्तोष की ज्वालाएं फूटती रहती हैं वहाँ दूसरे में महान् शान्ति, सुख और सन्तोष की शीतल लहरें उठती रहती हैं।

१०. सुख संध्या का लाल क्षितिज है जिसके पश्चात् घनघोर अन्धकार है और दुःख प्रातःकाल का पुनीत प्रभात है जिसके पश्चात् उज्जवल प्रकाश ही प्रकाश है।

सुख-शान्ति

१. जिस रास्ते से चलकर आप लोग आज शान्ति और सुख प्राप्त करना चाहते हैं, वह मार्ग सुख और शान्ति का मार्ग नहीं है। सुख और शान्ति का मार्ग तो संतोष है।

२. असंयम और अनुशासनहीनता को जहाँ खुलकर खेलने का मौका मिलता है वहाँ व्यक्ति, समाज या राष्ट्र अर्थ सम्पन्न होकर भी सुख और शान्ति से सम्पन्न नहीं हो सकता।

३. वास्तविक सुख-शान्ति, आत्मिक-तुष्टि और तृप्ति-सत्य, अहिंसा, सादगी और सन्तोषमय-आत्मधर्म यानी अध्यात्मवाद को आराधे व अपनाये बिना त्रिकाल में भी सम्भव नहीं हो सकती।

४. आत्म-निर्मलता शाश्वत सुख और शान्ति का हेतु है।

५. सुख वे चाहते हैं जो सुख-सुविधाओं को पाकर भी अतृप्त हैं। जो गरीब और सुख-सुविधाओं से वंचित हैं वे शान्ति की चर्चा नहीं कर रहे हैं, उनकी चर्चा अभी सुख-सुविधा के लिए चलती है। निम्न वर्ग असुविधा से पीड़ित है और उच्चवर्ग अशान्ति से।

६. संसार में कौन ऐसा व्यक्ति है जो सुख नहीं चाहता। प्राणीमात्र सुख का अभिलाषी है पर जब तक वह शान्ति के सही मार्ग पर आता नहीं तब तक उसे सुख कैसे मिल सकता है?

७. सुख तो आन्तरिक शान्ति से ही उपलब्ध है। वह परनिर्भर नहीं, आत्मनिर्भर है।

८. आज मानव को अपनी वृत्ति बदलनी है, अपने जीवन का सिंहावलोकन करना है, अपने अन्तर्तम को टटोलना है और उसमें रहे विकारों को साहस के साथ निकाल फेंकना है। यही वह मार्ग है, जिसपर चलकर वह शान्ति पा सकता है और सुख का साक्षात्कार कर सकता है।

९. शान्ति और सुख को वही पा सकता है जो आत्मस्थ होकर चले, लोभ, असन्तोष को त्यागकर जो निर्लोभी और सन्तोषी बने ।

१०. आवश्यकताओं का जितना अल्पीकरण होगा, जीवन उतना ही शान्त एवं सुखमय बनेगा ।

११. शान्ति का मूल्य सुख से बहुत अधिक है ।

१२. यदि संसार शान्ति और सुख चाहता है तो उसे अणुव्रतों के मार्ग पर आना होगा अन्यथा वह भटकता ही रहेगा ।

१३. आज मानव उन्नत होने के बजाय अवनत बन गया है । मैं कहूँगा कि यदि मानव को सही रूप से सुख और शान्ति की प्यास है तो वह आत्म-द्रष्टा बने ।

१४. प्रत्येक व्यक्ति के सामने अपनी अपनी कठिनाइयां रहती हैं । बिना उनके सहे सुखी नहीं हो सकेंगे । जिस व्यक्ति ने इस तथ्य को समझ लिया है, वह निश्चय ही एक आन्तरिक शान्ति का अनुभव करेगा ।

सुधार

१. समाज का सुधार डण्डे के बल से करना उचित नहीं, उससे समाज की रीढ़ टूट जाती है । सुधार तो अन्तर से होता है ।

२. यदि अपने आपको न सुधार कर संसार को सुधारने का प्रयास किया जायेगा तो न संसार सुधरेगा और न सुधारक ही।

३. सुधार धर्म से सम्भव है।

४. धर्म को जीवन में उतारिये। सत्य, अहिंसा, क्षमा, सहनशीलता—ऐसे धर्म-लक्षणों को अपनाइये। इसीमें जीवन का सुधार है, उद्धार है।

५. सुधरे हुए लोगों को तो सुधारने की कोशिश सब करते हैं पर महत्त्व उन लोगों को सुधारने की चेष्टा का है जो सधरे हुए नहीं हैं, संस्कारवान नहीं हैं। आदिवासियों या वनवासियों के जीवन को संस्कारित और शुद्ध बनाने का काम महत्त्वपूर्ण है।

६. व्यक्ति स्वयं अपना सुधार कर सके, औरों को सुधार के मार्ग पर आने की प्रेरणा दे सके, इसके लिए ज्ञान, चरित्र तथा क्रियाशीलता—इन बातों की आवश्यकता है। यह वह त्रिवेणी है जो जीवन में सच्ची पावनता एवं उत्तमता का संचार करवाती है।

७. सुधार का मार्ग है—हृदय-परिवर्तन और बुराइयों के प्रति घृणा।

८. सुधार के तीन सूत्र हैं—आत्म-निरीक्षण, आत्म-आलोचन और संकल्प।

९. मैं तो यह मानता हूँ कि व्यक्ति-सुधार ही सब सुधारों की सुदृढ़ भित्ति है। अगर व्यक्ति सुधार होता चला गया तो क्या समाज और राष्ट्र का सुधार पीछे रहेगा?

१०. मनुष्य अपना सुधार नहीं चाहता, समाज का सुधार चाहता है। स्वयं को सुधारे बिना समाज का सुधार नहीं हो सकता।

११. यदि सच्ची लगन के साथ काम किया जाये तो बहुत कुछ सफलता मिल सकती है।

१२. यदि समता, मैत्री और एकत्व की भावना बढ़ेगी तो व्यक्ति, समाज और राष्ट्र सभी सुधर जायेंगे।

१३. सुधार का सही माध्यम व्यक्ति-सुधार है।

१४. अपने आपके सुधार का जहाँ प्रश्न आता है वहाँ प्रायः व्यक्ति पीछे खिसक जाता है, किन्तु यह होना नहीं चाहिए इससे सुधार की बातें थोथी बन जाती हैं।

१५. सुधार के साधन व्रत हैं।

१६. सुधार का तरीका तो यह है कि व्यक्ति अपने को शुद्ध बनाये अपने व्यवहार को पवित्र, सत्य, तथा उदार बनाकर ही वास्तविक सुधार का द्वार खोज सकता है।

१७. सुधारक होना यह बहुत छोटी बात है, पर वास्तव में सुधरा हुआ होना बहुत बड़ी बात है।

१८. जिसका जीवन असंयत वृत्तियों से घिरा हो, न उसे कभी शान्ति मिल सकती है और न वह दूसरों को ही सुधार की ओर ले जा सकता है।

१९. आप भले ही बड़ी बड़ी योजनानायें बनालें पर आखिर उनका आधार तो व्यक्ति ही रहेगा। अतः उसे सुधारे विना कोई भी सुधार सम्भव नहीं है।

२०. सही सुधार कानून, बल या दण्ड से नहीं, हृदय परिवर्तन से होता है।

२१ सही बात तो यही है कि सुधार कार्य सबसे पहले अपने जीवन से शुरु होता।

२२. सुधार व्यक्तिगत और जातिगत दोनों प्रकार के होते हैं फिर भी दोनों की स्थिति एक सी नहीं होती।

२३ व्यक्तिगत सुधार हृदय परिवर्तन पूर्वक होता है, इसलिये वह स्थायी, स्वतंत्र और आत्मिक होता है, समष्टिगत सुधार बलात् कृत होता है इसलिये वह अस्थायी, परतन्त्र और अनात्मीय होता है।

२४. स्वयं सुधरे बिना दूसरे के सुधार की सोचना कल्पना की उड़ान से अधिक मूल्य नहीं रखता।

२५. आत्म-साधना या आत्म-सुधार के बिना दूसरों के उत्थान की बातें बनाना केवल आत्म विडंबना के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।



सुविधावाद

१. जहाँ सुविधावाद मुख्य बना वहाँ यथार्थवाद टिक नहीं सकता।

२. सहजता सुविधावाद है पर सुविधावाद स्थायी सुख का सर्जन नहीं करता।



सुसज्जा

१. संयम चर्या, सद्वृत्ति, सौजन्य ही सौन्दर्य या सुसज्जा है।
२. सच्ची भूषा है—सादगी, उत्तम विचार तथा उच्च-आचरण।



सौन्दर्य

१. आवरण से जो चीज सुन्दर लगती है उस सुन्दरता में सन्देह ही है। वास्तव में सुन्दर चीज वही है जो बिना आवरण के भी सुन्दर लगे।
२. प्राकृतिक-सौन्दर्य ही सहज सौन्दर्य है।



सौराज्य

१. सौराज्य वह है कि देशवासी लोग अपने शुद्ध धर्माचरण में पूर्ण स्वतंत्रता का अनुभव करें।

२. सौराज्य का यह अर्थ है कि लोगों के आपसी झगड़ों का अन्त हो जाये।

३. सौराज्य वह है कि जिसमें सदाचारी, अध्यात्मवाद के प्रचारक, पारमार्थिक उपकार के कर्णधार, दुराचार से भय खाने वाले साधु पुरुषों का आदर हो।

४. सौराज्य वह है जिसमें एक दूसरे के प्रति घृणा फैलाने की चेष्टा न की जाय।

५. सौराज्य का अर्थ है लोग उच्छृंखल न बने, गुरुजनों का अविनय न किया जाय, अन्याय का आचरण न किया जाय, कोई किसी के द्वारा तिरस्कार की दृष्टि से न देखा जाय।



स्मारक

१. यदि कोई सच्चा स्मारक हो सकता है तो वह यह कि स्वयं अपने पूर्वजों के आदर्शों को अपने जीवन में उतारे और दूसरे लोगों को भी यही प्रेरणा दे।



स्वदोषदर्शी

१. स्वदोषदर्शी बनो! परदोष देखने से कभी शान्ति हाथ नहीं लग सकती।
२. स्वयं को देखने वाला ही आगे बढ़ सकता है, अपने आपको पूर्ण मानने वाले का विकास अवरुद्ध हो जाता है।



स्वभाव दर्शन

१. स्वयंकृत अभाव में स्वभाव का दर्शन निकट से होता है।



स्वस्थ

१. स्वास्थ्य शब्द का अर्थ अपनी शब्द-रचना में निहित है। अपने स्वरूप में रहने वाला स्वस्थ होता है। स्वत्व से परत्व में जाना विकृति है, सम्पूर्ण विकृति न मिटे तब तक वह स्वस्थ नहीं कहलाता।

२. अतीत का प्रायश्चित और भविष्य में वैसा न करने का संकल्प ही स्वस्थता का लक्षण है।



स्वागत

१. सन्तों का स्वागत वाणी, शब्दों और पत्रों से नहीं होता, उनका स्वागत तो भक्ति से होता है।

२. वास्तविक अभिनन्दन हृदय का होता है।

३. सच्चा स्वागत तो मैं उनका मानता हूँ जहाँ जीवन में विकास की ओर गति दिखाई दे।

४. अकिंचनों के स्वागत का सही तरीका उनके बताये मार्ग पर अग्रसर होने का संकल्प करना है।



स्वाधीनता

१. स्वाधीनता सबसे बड़ा आनन्द और सबसे बड़ा उल्लास है।

२. स्वाधीनता का फल केवल समृद्धि का विकास ही नहीं है, चरित्र-विकास भी उसका फल है।

३. आजादी का सच्चा महत्त्व आन्तरिक स्वतंत्रता और निर्बन्धता में है।

४. धर्म को अपनाने से ही वास्तविक स्वतंत्रता का सूत्र ग्राह्य होगा।

५. सच्ची स्वतंत्रता दुर्गुणों की दासता से मुक्ति पाना है।

६. आन्तरिक स्वतंत्रता के बिना बाहरी स्वतंत्रता पूर्ण रूप से सफल नहीं हो सकती।

८. नियमानुवर्तिता व मर्यादा के बिना स्वतंत्रता नहीं आती।

७. विजातीय बन्धन को तोड़ फेंके विना कोई भी आदमी स्वतंत्र नहीं होता।

९. स्वतंत्रता का दीप व्यक्ति स्वातन्त्र्य की बलि वेदी पर जले तभी शान्ति रेखा विद्योतित होगी।

१०. जहाँ मर्यादाविहीन स्वतंत्रता आती है वहाँ संगठन की दीवार खोखली होने लगती है।

११. अंतरंग स्वातन्त्र्य के बिना हजार उपाय करने पर भी सुख सम्भव नहीं।

१२. स्वतंत्र वह है जो न्याय के पीछे चलता है।

१३. स्वतंत्र वह है जो स्वार्थ के पीछे नहीं चलता। जिसे अपने स्वार्थ और तज्जन्य गुट में ही ईश्वर दर्शन होता है, विश्व-शान्ति और भलाई दीख पड़ती है वह परतंत्र है।

स्वार्थ

१. स्वार्थों की भूल-भुलैया व्यक्ति को इतना गुमराह कर देती है कि धर्म जो शान्ति, मैत्री, ऐक्य और समन्वय का साधन है उसे भी वह कलह और वैमनस्य की शृंखलाओं में बांध डालती है। इस भूल-भुलैया से परे होकर मानव विवेक औरबुद्धि से काम ले, धर्म के सही स्वरूप को समझे तो जीवन में शान्ति और सुख का संचार होगा।

२. स्वार्थ व्यक्ति को अन्धा बना देता है, इसके वश हो वह अपना विवेक खो बैठता है।

३ स्वार्थ-साधना में संघर्ष हुए बिना नहीं रहते।

४. जहाँ स्वार्थ पूर्ति का चक्र चला वहाँ हिंसा ने अपना प्रसार किया, अविश्वास ने जड़ जमाई, अनैतिकता ने फैलाव पाया। फिर भला मानव-जीवन में सुख कैसे बच सकता है।

५. शान्ति का सबसे बड़ा बाधक-तत्त्व है—स्वार्थ।

६. दूषित वायु-मण्डल में जैसे श्वास भी दूषित हो जाता है, शरीर स्वस्थ नहीं रह पाता, वैसे ही स्वार्थ के वायुमण्डल में धर्म भी शुद्ध नहीं रह सकता।

हिंसा

१. किसी के अर्थ को अनर्थ कर प्रसारित करना, किसी के प्रति भ्रान्ति फैलाना हिंसा है।

२. हिंसा प्रतिहिंसा की जन्मदातृ है। यूरोप का इतिहास इसका ज्वलन्त प्रमाण है। रूस में लेनिन आया, स्टालिन

आया और उसके बाद ख्रुश्चेव। स्टालिन ने लेनिन के लिए क्या किया और ख्रुश्चेव ने स्टालिन के लिए क्या किया, यह किसी से छिपा नहीं है।

३. हिंसा से हिंसा नहीं मिट सकती।

४. परिस्थिति की बाध्यता के बिना हिंसा को त्यागने में जो प्रकाश है वह बाध्यता की स्थिति में नहीं है।

५. कायिक और वाचिक हिंसा से भी मानसिक हिंसा जटिल होती है।

६. जीवन-निर्वाह के साधनों का केन्द्रीकरण हुआ, फलतः शोषण बढ़ा, हिंसा बढ़ी।

७. एक बार जो व्यक्ति हिंसा के क्षेत्र में उतर पड़ता है वह फिर सहजतया उसके चक्रव्यूह से बाहर नहीं निकल सकता।

८. हिंसा का आकर्षण इसलिए है कि उससे भोगवृत्ति पलती है, भोग-सामग्री परिग्रह-सापेक्ष है और परिग्रह हिंसा-सापेक्ष है।

९. कोई किसी की असत् टीका-टिप्पणी करता है, वह भी हिंसा है।

१०. कोई किसी के विचारों को तोड़-मरोड़कर रखता है या किसी पर आरोप लगाता है, वह भी एक प्रकार की वैचारिक हिंसा है।

११. किसी के उत्कर्ष को न सहकर उसके प्रति घृणा का प्रचार करना हिंसा है।

१२. किसी के प्राणों का बध कर डालना हिंसा का स्थूल रूप है, किसी के प्रति मानसिक और वैचारिक असत् प्रवृत्ति हिंसा का सूक्ष्म रूप है।

१३. भोग स्वयं हिंसा है, उसकी सुरक्षा के लिये हिंसा करनी पड़ती है।

१४. जाति का मद हिंसा है।

१५. विद्या का उन्माद हिंसा है।

१६. यदि प्रत्यक्ष हिंसा की भान्ति परोक्ष हिंसा से भी घृणा होती तो जीवन इतना असत्यनिष्ठ और अप्रमाणिक नहीं बनता।

१७. अशान्ति की जड़ है हिंसा। जड़ में जब हिंसा है, दुर्भाव है, द्वेष है तब ऊपर अहिंसा, सद्भावना और प्रेम कैसे आ सकता है ?

१८. दबाव से लिया गया श्रम हिंसा की कोटि में है।

१९. गलत चिन्तन हिंसा है।

२०. हिंसा की परिसमाप्ति अहिंसा में ही हो सकती है।

२१. स्पर्धा से संहार को बल मिलता है।

२२. जहां जय और पराजय की भावना होती है वहाँ हिंसा है।

२३. हिंसा से आत्मा अपवित्र बनती है इसलिए हिंसा का निषेध किया गया।

२४. हिंसा को मिटाना है, हिंसक को नहीं। हिंसक को मिटाना तो स्वयं हिंसा है।

२५. बाहरी आकर्षण हिंसा है।

२६ जहाँ विवशता है वहाँ स्पष्ट हिंसा है।

२७. अनिवार्य हिंसा भी हिंसा है।

२८. संकल्पज्जा हिंसा अशान्ति का प्रमुख कारण है।

२९. जितनी असत् प्रवृत्ति, आसक्ति, एवं अमैत्रीपूर्ण आचरण है, वह सब हिंसा है।

३०. किसी का बुरा सोचना भी हिंसा है।

३१. अहिंसा के लिए हिंसा के प्रयोगात्मक साधन भी हिंसा को ही जन्म देते हैं।

३२. प्राणों के चले जाने मात्र को जो हिंसा मानते हैं वे उनके बच जाने मात्र को भी वास्तविक अहिंसा मान सकते हैं, किन्तु जो व्यक्ति हिंसक की वृत्तियों के बिगाड़ और सुधार को ही हिंसा या अहिंसा मानते हैं, उनकी अन्तर्मुखी दृष्टि में प्राणों की प्रमुखता नहीं रहती।

३३. हिंसा और स्वार्थ की नींव पर खड़ा किया गया वाद भले ही आकर्षक लगता हो, अधिक टिक नहीं सकता।

३४. बल प्रयोग द्वारा कसाई से बकरा छुड़ाना भी हिंसा है।

३५. यदि औरों को गिराना हिंसा है तो स्वयं का पतन करना भी हिंसा है।

३६. आत्म-हत्या भी उसी प्रकार हिंसा है जिस प्रकार किसी दूसरे की हत्या।

हीन-भाव एवं अहम्-भाव

१. अहंकार और हीनता दोनों ही पाप हैं।

२. अपने को बड़ा मानना अभिमान है और हीन मानना कमजोरी।

३. ज्योंही अपने आपको अधिक महत्त्व देने की भावना जगी, त्योंही फूट पड़े बिना नहीं रहेगी।

४. अहं वृत्ति में न्याय नहीं देखा जाता, वहाँ तो यही सोचा जाता है कि किसी भी प्रकार से मेरा अहं सुरक्षित रहे।

५. अहंकार सात्विक गुणों को ढ़कता है, विकास का अवरोध करता है।

६. अपने को हीन समझना, आत्मशक्ति को कुण्ठित करना है।



हृदय-परिवर्तन

१. हृदय परिवर्तन हृदय से होगा।

२. हृदय-परिवर्तन की बात को भी बहुत बार लोग साधारण कहकर टाल देते हैं, पर किसी भी निर्माण का पूर्ण रूप हृदय-परिवर्तन ही है।

३. जीवन को बदलना धर्म का एक प्रमुख लक्ष्य है, जो हृदय-परिवर्तन के मार्ग के सिवा सम्भव नहीं।

४. हृदय-परिवर्तन के अभाव में बलात् हुआ कोई भी कार्य चिरस्थायी हो सके, ऐसा बहुत कम सम्भव है।

५. अध्यात्मिक दया का सम्बन्ध हृदय-परिवर्तन है, परन्तु लौकिक दया का सम्बन्ध सिर्फ बचाने मात्र से है, हृदय परिवर्तन से नहीं।

६. जब तक हिंसा करने वाले प्राणी का हृदय-परिवर्तन नहीं किया जायेगा तब तक सम्भव नहीं कि वह व्यक्ति अहिंसक बन जाए।

७. अहिंसा और दया का सम्बन्ध वस्तुतः हृदय परिवर्तन से है।

८. मनुष्य की वृत्ति बदलने पर ही वास्तविक अहिंसा की वृत्ति जागृत हो सकती है।

९. मनुष्य की वृत्तियाँ बदलना ही अहिंसा और दया की सच्ची साधना है।

१०. हृदय बदले बिना कोरी कागजी कार्यवाहियों से कुछ बनने का नहीं।

११. आत्मिक दुर्व्यवस्था परिसमाप्ति का एकमात्र साधन हृदय परिवर्तन ही है।

१२. हृदय परिवर्तन जीवन सुधार का सच्चा मार्ग है।

हेय-ज्ञेय-उपादेय

१. हेय-ज्ञेय और उपादेय को समझते हुए व्यक्ति आत्मनिष्ठ बने, आत्म जागरण और शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील हों, इसी में उनके दार्शनिक अनुशीलन की सार्थकता है।

२. जानने की दृष्टि से व्यक्ति को प्रत्येक बात जाननी चाहिए पर उसमें जो अहितकर हो उसका परित्याग करना चाहिए।



क्षमत–क्षमापना

१. क्षमा-याचना एक पक्षीय होती है, किन्तु क्षमत-क्षमापना उभय-पक्षीय। वहाँ व्यक्ति दूसरों से क्षमा लेते हैं तो उसे क्षमा-दान देना भी पड़ता है।

२. क्षमत-क्षमापना अन्तर आत्मा से हो, अन्यथा वह केवल होठों का व्यायाम व निराशब्दाडम्बर मात्र होगा।

३ इक तरफी क्षमा-याचना गुलामी की निशानी है। खुद क्षमा मांगे और दूसरों को क्षमा करे—यह एक तत्त्व है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति अपनाए, जीवन में उतारे।

४. अपनी गलतियों के लिए क्षमा लें और उनकी गलतियों के लिए उन्हें क्षमा दें—यह क्षमत-क्षमापना का महान् सूत्र है।



क्षमता

१. दूसरों के लिए करने की क्षमता उन्हीं में हो सकती है, जो अपने लिए कुछ करें।

२. कुछ कर गुजरने की क्षमता उनमें होती है, जिनका जीवन अहिंसा, सच्चाई और न्यायपरायणता जैसे सद्गुणों से मंजा हो।



क्षमा

१. क्षमा-अहिंसा का ही एक नाम है।

२. क्षमा का मतलब समन्वय या मैत्री है।

३. क्षमा सच्ची वीरता है।

४. अहिंसा के विचार हिंसा पैदा करे यह उचित नहीं, इस समस्या का निर्विकल्प समाधान है—क्षमा।

५. क्षमाशील होना जैनत्व का सच्चा गौरव है।



ज्ञान

१. यथार्थ एवं सार्थक ज्ञान वह है जो आचार संवलित है।

२. ज्ञान तभी फल लायेगा जब जीवन पवित्र होगा।

३. ज्ञानाभाव में जीवन शून्य रहता है।

४ मानव यदि कुछ करना चाहता है तो पहले वह ज्ञानोपार्जन करे।

५. जीवन में ज्ञानाराधन का बहुत बड़ा महत्त्व है, जब तक जीवन में ज्ञान का समावेश नहीं होता तब तक मनुष्य सही और गलत मार्ग की पहचान नहीं कर सकता। हेय और उपादेय तत्त्व का ज्ञान नहीं पा सकता, अतः पहले ज्ञानी बनो, फिर दयावान।

६. सद्ज्ञान जीवन में सन्मार्ग प्रदर्शित करता है। चरित्र के मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए ज्ञान प्रेरणा स्त्रोत है।

७. बिना ज्ञान के श्रद्धा अधूरी है—अन्धी है।

८. साक्षरता ज्ञान नहीं, वह तो ज्ञान का साधन मात्र है। ज्ञान तो वह है जिससे गुण-दोष की परख होती है, हेय-उपादेय की भावना जागृत होती है और हिताहित का बोध होता है।

९. आजीविका के लिए ज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं, उसकी आवश्यकता तो आत्म-विकास और चरित्र-विकास के लिये है।

१० बन्धनों को जानो और तोड़ो। जानना पहले आवश्यक है, बन्धनों को जाने बगैर तोड़ना सम्भव नहीं। तोड़े बिना आजादी कहाँ? और आजादी के अभाव में गुलामी से पिण्ड छूटता नहीं है इसलिए (ज्ञान) जानने की सबसे पहले आवश्यकता है।

११. ज्ञान सिर्फ ज्ञान के लिए नहीं बल्कि ज्ञान जीवन के लिए है।

१२. जीवन को विकसित करने के लिए ज्ञान की सबसे अधिक आवश्यकता है। ज्ञान ही जीवन है, ज्ञान ही सार है, ज्ञान ही तत्त्व है और ज्ञान ही आत्म-निर्माण तथा आत्म-विकास का मुख्य साधन है।

१३. ज्ञान अपने आप में प्रकाशपुंज है।

१४. ज्ञान के साथ जिनमें चरित्र नहीं है वे परमार्थ तो क्या व्यवहार में भी सफल नहीं हो सकते।

१५. ज्ञान और विज्ञान प्राप्त कर मनुष्य अहिंसा और समता की आराधना करे यह उसका सही उपयोग है।

१६. वह ज्ञान अज्ञान है जो जीवन के अन्तरतम को नहीं छूता।

१७. ज्ञान का घनीभूत रूप ही श्रद्धा है।

१८. ज्ञान की अपूर्णता ही अहं को जन्म देती है।

ज्ञान–क्रिया

१. ज्ञान के बिना क्रिया अन्धी है।

२. क्रिया और ज्ञान एक दूसरे के पूरक हैं।

३. ज्ञान से प्रकाश मिलता है और चरित्र से जीवन होता है।

४. ज्ञान की जीवन में आदेयता है इसमें कोई संशय नहीं चरित्र-शून्य ज्ञान बैल की पीठ पर लदी उन पुस्तक जैसा है जिनका उपयोग उस बैल के लिए सिर्फ भार के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

५. मोक्ष के लिए ज्ञान और क्रिया की नितान्त आवश्यकता



सम्मति

'सीपीसुक्त' (आचार्य श्री तुलसी के भाषणों में से चुनी हुई बाणियाँ) की पाण्डुलिपी देखने को मिलीं। आचार्य श्री तुलसी देश के माने हुए आध्यात्मिक विचारक हैं। मुझे भी उनके भाषण सुनने का कई बार मौका सुलभ हुआ है। 'सीपी सुक्त' में उनकी जो बाणियाँ संग्रहीत है वे बहुत उपयोगी हैं। जिस प्रकार विशाल समुद्र के गहन तल में छिपी सीप के अन्तस्तल में उज्ज्वल व प्रकाशमान मोती रहता है, ठीक यही उपमा मैं 'सीपी सुक्त' के लिए उपयुक्त समझता हूँ।

इसके संग्रहकर्त्ता ने जिस परिश्रम व लगन से कार्य किया है, अत्यन्त प्रेरणादायक है। ग्रन्थ को विभिन्न विषयों के अनुसार विभक्त करके तो इसके महत्व को और अधिक बढ़ा दिया है। सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में इसका सर्वत्र आदर होगा तथा आज का बुद्धिवादी वर्ग इन वाणियों की गहराई में जाकर इसके चिन्तन को अधिक व्यापकता देंगे—ऐसी मुझे आशा है।

लालगढ़, बीकानेर
राजपुताना

करणीसिंह
महाराजा, बीकानेर